सुलभ साहित्य-माला ७८

शरत्-साहित्य

(बारहवाँ भाग)

रमा, परिणीता

अनुवादकर्त्ता

रामचन्द्र वर्मा

धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं० ४.

पहली बार
मार्च, १९२९

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६, केळेवाडी, गिरगांव मुंबई.

निवेदन
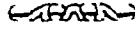
इस भागके प्रकाशित करनेमें भी काफी विलम्ब हो गया। परन्तु इसके साथ ही हम १३–१४ वें भाग भी उपस्थित कर रहे हैं, जिसे आशा है कि पाठकोंको बहुत अंशोंमे सन्तोष हो जायगा।

इस भागमें एक तो 'रमा' नाटक है जिसे स्वर्गीय शरद् बाबूने अपने 'पल्ली-समाज' नामक उपन्यासको ही नाटककारमें परिवर्तित करके लिखा था और जो बड़ी सफलताके साथ कलकत्तेके स्टार थियेटरमें खेला जा चुका है। इसका अनुवाद श्रीरामचन्द्र वर्माने किया है। दूसरी रचना 'परिणीता' है जो शरद् बाबूकी प्रसिद्ध कहानी है। इसका अनुवाद श्रीधन्यकुमार जैनने किया है।

श्रीकान्तके चौथे पर्वके लिए पाठकोंको बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी है। परन्तु अब आशा है कि वह भी शीघ्र प्रकाशित हो जायगा।

—प्रकाशक

रमा

पहला अंक

पहला दृश्य

[स्वर्गीय यदुनाथ मुकर्जीके मकानका पिछला भाग : खिड़कीका दरवाजा खुला है। सामने एक छोटा-सा रास्ता है। चारों ओर आम और कटहलका बगीचा है। थोड़ी दूरपर तालाबके पक्के घाटका कुछ हिस्सा दिखाई देता है। सबेरेका समय है। रमा और उसकी मौसी स्नान करनेके लिए बाहर निकली हैं। ठीक दूसरी तरफसे वेणी घोषाल भी आते हैं। रमाकी उम्र बाईस-तेईससे ज्यादा नहीं है। थोड़ी ही उम्रमें विधवा हो गई थी, इसलिए उसके हाथमें कुछ चूड़ियाँ ही हैं और वह बारीक किनारकी एक धोती पहने हुए है। वेणीकी उम्र भी पैंतीस-छत्तीससे ज्यादा नहीं है।]

वेणी—रमा, मैं तो तुम्हारे पास ही आ रहा था।

मौसी—लेकिन बेटा, इस खिड़कीके रास्ते क्यों आ रहे थे?

रमा—मौसी, तुम भी खूब हो। बड़े भइया घरके ही आदमी हैं। भला उनके लिए सदर दरवाजा क्या और खिड़की क्या?—क्या कुछ काम है? तो चलकर अन्दर बैठो न, मैं अभी जल्दीसे गोता लगाकर आती हूँ।

वेणी—बहन, बैठनेको वक्त नहीं है, बहुत-से काम हैं। बतलाओ, तुमने कुछ निश्चय किया कि क्या करोगी ?

रमा—निश्चय किस बातका बड़े भइया ?

वेणी—बहन, वही हमारे छोटे चाचाके श्राद्धका। रमेश कल आ पहुँचा है। अपने पिताका श्राद्ध वह खूब ठाठसे करेगा। तुम जाओगी या नहीं ?

रमा—मै जाऊँगी, तारिणी घोषालके घर !

वेणी—हाँ बहन, यह तो मै जानता हूँ कि और चाहे जो चला जाय, लेकिन तुम किसी हालतमें भी उस मकानमें पैर नहीं रखोगी। लेकिन सुना है कि वह लौंडा खुद जाकर घर घर कह जायगा। पाजीपनकी बातोंमें तो वह अपने बापपर ही जाता है। अगर वह सचमुच तुम्हारे यहाँ आया, तो क्या कहोगी ?

रमा—बड़े भइया, मैं कुछ भी नहीं कहूँगी। बाहर दरबान ही उसे जवाब दे लेगा।

मौसी—दरबान क्यों जवाब देने लगा ? क्या मैं बात करना नहीं जानती ? पाजीको मैं तो ऐसी खरी खरी सुनाऊँगी कि फिर कभी इस जन्ममें मुकर्जीके घर मुँह न दिखाए। तारिणी घोषालका लड़का आएगा हमारे मकानमें न्यौता देने ? मैं कुछ भी नहीं भूली हूँ वेणीमाधव ! तारिणी इस लड़केके ही साथ हमारी रमाका व्याह करना चाहता था। तब तक यतीन्द्रका जनम भी नहीं हुआ था। उसने सोचा था कि इस तरह मुकर्जीकी सारी जायदाद मुट्ठीमें आ जायगी। बेटा वेणी, समझते हो न ?

वेणी—हाँ, मौसी समझता क्यों नहीं, सब कुछ समझता हूँ।

मौसी—हाँ हाँ बेटा, समझोगे क्यों नहीं। यह तो सीधी-सी बात है। और जब मनचाहा नहीं हुआ, तब इसी भैरव आचार्यसे न जाने क्या क्या जप-तप और जादू-मन्तर कराके बेटीके भागमें ऐसी आग लगा दी कि छः महीने भी नहीं बीतने पाये कि इसके हाथोंमें लोहेकी चूड़ियाँ नहीं रहीं और माथेका सिन्दूर पुँछ गया। नीच होकर चाहता था यदु मुकर्जीकी लड़कीको अपनी बहू बनाना। वैसी ही उस हरामजादेकी मौत भी हुई। गया था सदरमें मुकदमा लड़ने, पर लौटकर घर भी न आ सका। एकलौता लड़का था, पर उसके हाथकी आग भी नसीब न हुई। ऐसे नीचोंके मुँहमें आग।

रमा—मौसी, तुम किसीको नीच क्यों बनाती हो ? तारिणी घोषाल बड़

भइयाके सगे चाचा ही तो थे। बाम्हनको तीज क्यों कहती हो ? तुम्हारा तो जैसे कहीं रुकता ही नहीं।

वेणी—(कुछ लज्जित होकर) नहीं रमा, मौसीने ठीक ही कहा है। तुम कितने बड़े कुलीन घरकी लड़की हो ! भला बहन, तुम्हें क्या हम लोग अपने घर ला सकते हैं ? छोटे चाचाके मुँहसे यह बात निकलना ही बेअदबीका काम था। और जन्तर-मन्तरकी जो बात है वह भी सत्य है। छोटे चाचा और भैरवके लिए दुनियामें कोई भी काम ऐसा नहीं जो वे कर न सकते। रमेशके आते ही यह बदमाश उससे मिल गया है और उसका मुरब्बी बन बैठा है।

मौसी—वेणी, यह तो जानी हुई बात है। लौंडा दस-बारह बरस तक तो घर ही नहीं आया। उसके मामा आकर उसे काशी या न जाने कहाँ ले गये और फिर उन्होंने कभी इस ओर आने ही नहीं दिया। वह इतने दिनों तक था कहाँ ? और करता क्या था ?

वेणी—भला मौसी, मुझे क्या मालूम। छोटे चाचाके साथ तुम लोगोंका जैसा बरताव था, वैसा ही मेरा भी था। सुनता हूँ कि इतने दिनों तक वह न जाने बम्बई या कहाँ था। कोई कहता है कि उसने डाक्टरी पास कर ली है, कोई कहता है कि वह वकील हो गया है और कोई कहता है कि यह सब गप्प है। और फिर यह लौंडा भारी शराबी है। जिस समय घर आया था, उस समय उसकी दोनों आँखें अड़हुलके फूलकी तरह लाल हो रही थीं।

मौसी—ऐसी बात है ? तब तो फिर उसे घरके भी अन्दर न घुसने देना चाहिए।

वेणी—हरगिज नहीं। क्यों रमा, तुम्हें रमेशकी याद तो है ?

रमा—(कुछ लज्जित भावसे मुस्कराती हुई) बड़े भइया, यह तो अभी कलकी ही बात है। वे मुझसे कोई चार ही बरस बड़े हैं। एक ही पाठशालामें पढ़े हैं, एक साथ खेले हैं, उन लोगोंके घरमें ही तो रहा करती थी। चाची मुझे अपनी लड़कीकी तरह चाहती थीं।

मौसी—उस चाहनेके मुँहमें आग ! वह चाहना था खाली अपना मतलब गाँठनेके लिए। उन लोगोंने फन्दा ही डाला था किसी तरह तुझे फँसा लेनेके लिए। रमेशकी माँ क्या कम चालबाज थी !

वेणी—इसमें सन्देह ही क्या है ! छोटी चाची भी...

रमा—देखो मौसी, तुम लोग और चाहे जो कहो; लेकिन मेरी चाची स्वर्गमे हैं, उनकी निन्दा मैं किसीके भी मुँहसे नहीं सुन सकती।

मौसी—कहती क्या है री? एकदम इतना—

वेणी—हाँ, यह तो ठीक है। ठीक है। छोटी चाची भले आदमीकी लड़की थीं। उनकी चर्चा चलनेपर अब भी माँकी आँखोंमें आँसू भर आते हैं। पर अब इन बातोंको जाने दो। तो अब यही बात बिलकुल पक्की रही न बहन? कुछ इधर उधर तो नहीं होगा न?

रमा—(हँसकर) नहीं। बड़े भइया, बाबूजी कहा करते थे कि आग, करज और दुश्मनका कुछ भी बाकी नहीं रहने देना चाहिए। तारिणी घोषालने जीते जी हम लोगोंको कम नहीं सताया,—बाबूजी तकको वे जेल भेजना चाहते थे। बड़े भइया, मैं कुछ भी नहीं भूली हूँ, और जब तक जीती रहूँगी, भूलूँगी भी नहीं। रमेश उसी दुश्मनके लड़के हैं। हम लोग तो नहीं ही जायँगे, साथ ही जिन लोगोंके साथ हमारा किसी तरहका सम्बन्ध है, उन लोगोंको भी नहीं जाने देंगे।

वेणी—यही तो चाहिए और यही है तुम्हारे लायक बात।

रमा—क्यों बड़े भइया, कोई ऐसा उपाय नहीं किया जा सकता कि कोई भी ब्राह्मण उनके घर न जाय? तब तो...

वेणी—अरे बहन, मैं वही तो कर रहा हूँ। यदि तुम मेरी सहायता करती रहो तो फिर मुझे और कोई चिन्ता नहीं। रमेशको अगर मैं इस कूआँपुर गाँवसे न भगा दूँ, तो मेरा नाम वेणी घोषाल नहीं। उसके बाद रह जाऊँगा मैं और यह साला आचार्य। छोटे चाचा तो अब है नहीं, देखूँगा कि अब इसे कौन बचाता है?

रमा—(हँसकर) मैं समझती हूँ कि यही रमेश घोषाल बचावेंगे। लेकिन बड़े भइया, मैं कहे देती हूँ कि हम लोगोंके साथ दुश्मनी करनेमें वे भी कोई बात उठा नहीं रखेंगे।

वेणी—(इधर-उधर देखकर और स्वर कुछ अधिक धीमा करके) रमा, असल बात तो यह है कि रुपये पैसे और जमीन-जायदादका हाल वह अभीतक कुछ भी नहीं समझता। अगर बाँसको उखाड़ फेंकना चाहती हो, तो यही समय है। यदि पक गया तो मैं कहे देता हूँ कि फिर नहीं हिल सकेगा। तुमे

दिन रात इस बातका ध्यान रखना पड़ेगा कि यह और कोई नहीं, तारिणी घोषालका ही लड़का है। अगर अच्छी तरह जम गया तो फिर...

[रमा चौंक पड़ती है। तुरन्त ही दरवाजेमेंसे रमेश अन्दर आता है। उसका सिर रूखा है, पैर नगे हैं, और दुपट्टा सिरमें लिपटा हुआ है। वेणीकी ओर दृष्टि पड़ते ही—]

रमेश—अरे, बड़े भइया यहाँ हैं ? अच्छा, तो चलिए। आपके बिना यह सब करेगा कौन ? मैं तो गाँव-भरमें आपको ढूँढ़ता फिर रहा हूँ। रानी कहाँ है ? देखा कि घरमें कोई नहीं है। मजदूरनीने कहा कि इसी तरफ गई हैं...

[रमा सिर झुकाकर खड़ी थी। सहसा उसे देखकर—]

रमेश—अरे ये तो यहीं हैं। अरे तुम तो इतनी बडी हो गई ! अच्छी तरह हो न ? मालूम होता है शायद मुझे पहचान नहीं रही हो। मैं तुम्हारा रमेश भइया हूँ।

रमा—(सिर उठाकर उसकी तरफ देखती तो नहीं, पर कोमल स्वरसे पूछती है—) आप अच्छी तरह हैं ?

रमेश—हाँ, अच्छी तरह हूँ। लेकिन रानी, मुझे 'आप' क्यों कहती हो ? (वेणीकी ओर देखकर) बड़े भइया, रमाकी एक बात मैं कभी न भूलूँगा। जिस समय मेरी माँ मरी, उस समय ये बहुत छोटी थीं। लेकिन उस समय भी इन्होंने मेरे आँसू पोंछते हुए कहा कि 'रमेश भइया, तुम रोओ मत। मेरी माँ तो है ही, हम दोनों उसीको बाँट लेंगे।' शायद तुम्हें यह बात याद नहीं है। क्यों, याद नहीं है न ? मेरी माँ तो याद है न ?

[रमा कोई उत्तर नहीं देती। मारे लज्जाके उसका सिर और भी नीचे हो जाता है।]

रमेश—लेकिन रानी, अब तो समय ही नहीं है। जो कुछ करना हो, कर-धर दो। जिसे बिलकुल निराश्रय कहते हैं, वही होकर मैं फिर तुम लोगोंके दरवाजेपर आ खड़ा हुआ हूँ। अगर तुम लोग नहीं चलोगी, तो शायद कुछ भी इन्तजाम न हो सकेगा।

मौसी—(रमेशके पास पहुँचकर और उसके मुँहकी ओर देखकर) क्यों भइया, तुम तारिणी घोषालके ही लड़के हो न ?

[रमेश चकित होकर चुपचाप देखने लगता है ।]

मौसी—तुमने पहले तो मुझे कभी देखा नहीं था, इसलिए बेटा, तुम मुझे पहचान नहीं सकोगे। मैं रमाकी सगी मौसी हूँ। लेकिन मैंने तुम्हारे जैसा बेहया आदमी आज तक नहीं देखा। जैसा बाप था, वैसा ही लड़का भी हुआ है! कोई बात नहीं, कोई चीत नहीं, इस तरह एक गृहस्थके घरमें खिड़कीके रास्ते घुसकर उत्पात मचानेमें तुम्हें शरम नहीं आती?

रमा—मौसी, तुम यह क्या बक रही हो! नहाने जाओ न।

(वेणीका चुपचाप प्रस्थान।)

मौसी—नहीं रमा, बकती नहीं हूँ। जो काम करना ही है, उसमें मुझे तुम लोगोंकी तरह मुँह देखी मुरौवत नहीं है। भला वेणीको इस तरह भाग जानेकी क्या जरूरत थी! इतना तो कह कर जाना था कि 'भाई, हम लोग तुम्हारे नौकर गुमाश्ते नहीं हैं और न तुम्हारी जमींदारीकी परजा ही हैं जो तुम्हारे घर पानी भरने और आटा सानने जायँगे। तारिणी मर गया तो लोगोंका कलेजा ठंढा हुआ।' यह कहनेका भार हमारे जैसी दो औरतोंपर न छोड़कर आप ही कह जाता, तो मर्दका काम होता।

[रमेश चुपचाप पत्थरकी मूरतकी तरह खड़ा रहता है।]

मौसी—जो हो, मैं ब्राह्मणके लड़केका नौकर-चाकरोंसे अपमान नहीं कराना चाहती। जरा होशमें आकर काम करो। तुम कोई छोटे बच्चे नहीं हो जो दूसरोंके घरमें घुसकर लाड़-प्यारकी बातें करते फिरो। तुम्हारे घर मेरी रमा कभी अपने पैर धोने भी न जा सकेगी। मैंने तुमसे साफ साफ कह दिया।

रमेश—रमा, माँ तुमसे रानी कहा करती थीं। लड़कपनकी उनकी वही बात मुझे याद थी। मैं नहीं जानता था कि तुम मेरे घर जा भी नहीं सकोगी। रमा, अनजानमें मुझसे जो गलती हो गई, उसके लिए मुझे क्षमा करो।

[रमेश चला जाता है। वेणी फिर आ पहुँचता है। इस समय उसके चेहरेसे प्रसन्नता प्रकट हो रही है]

वेणी—वाह मौसी, तुमने खूब सुनाई! इस तरह कहना हम लोगोंके बूतेकी बात न थी। रमा, यह काम क्या किसी नौकर-चाकरसे हो सकता था? मैंने आड़में खड़े खड़े देखा कि लौंडा आषाढ़के बादलोंकी तरह काला मुँह करके चला गया। यह बहुत ठीक हुआ।

मौसी—हाँ, ठीक तो हुआ। लेकिन यह सब कहनेका भार औरतोंपर न छोड़कर और यहाँसे खिसक न जाकर खुद ही कहते तो और भी अच्छा होता। और अगर नहीं कह सकते थे, तो भैया, कमसे कम सामने खड़े होकर सुन ही लेते, कि मैंने क्या क्या कहा?

रमा—मौसी, तुम अफसोस मत करो, ये न सुनें, पर मैंने सब सुन लिया है। कोई कितना भी क्यों न कहता लेकिन तुम्हारे सिवा और कोई अपनी जीभसे इतना जहर न उगल सकता।

मौसी—तूने यह क्या कहा?

रमा—कुछ नहीं। कहती हूँ कि क्या आज रसोई-पानीका कुछ बन्दोबस्त नहीं होगा? जाओ न, डुबकी लगा आओ।

(रमा जल्दीसे तालाबकी तरफ चल देती है।)

वेणी—क्यों मौसी, आखिर बात क्या है?

मौसी—भला बेटा, मैं क्या जानूँ। इस राज रानीका मिजाज समझना क्या मेरी जैसी मजदूरनियों और लौंडियोंका काम है?

(प्रस्थान)

[गोविन्द गांगुलीका प्रवेश]

गोविन्द—खैर, मिल तो गये! मैं सबेरेसे सारे गाँवमें ढूँढ़ फिरा कि आखिर वेणी बाबू गये कहाँ! पूछता हूँ, कुछ हाल-चाल सुना? बेटाजी कल घर आते ही दौड़े गये थे नन्दीके यहाँ। अगर दो-चार दिनमें ही वह बरबाद न हो जाय, तो तुम लोग मेरा नाम बदल देना। अगर उसके शाही श्राद्धकी फेहरिस्त सुनो तो अवाक् रह जाओगे। मैं जानता हूँ कि तारिणी घोषाल एक पाई भी मरते समय नहीं छोड़ गया था। फिर इतना ठाठ किस बिरतेपर? अगर हाथमें हो, तो करो। न हो तो मत करो। अपनी जायदाद रेहन रखकर किसीने कभी ऐसे ठाठसे बापका श्राद्ध किया हो, ऐसा तो भइया, मैंने कभी नहीं सुना। वेणीमाधव बाबू, मैं तुमसे बिलकुल ठीक कहता हूँ कि इस लड़केने नन्दीकी कोठीसे कमसे कम पाँच हज़ार रुपये उधार लिये हैं।

वेणी—अरे यह क्या कह रहे हो! तब तो गोविन्द चाचा, तुमने खूब पता लगाया है!

गोविन्द—(कुछ हँसकर) भइया, जरा धीरज धरो, मुझे एक बार अच्छी तरह अन्दर तो घुस जाने दो। फिर देखना कि मैं नाड़ीके अन्दर तककी खबर ले आता हूँ कि नहीं। उसी समय तुम गोविन्द गांगुलीको पहचानोगे! इस बीच तुम्हें बहुत-सी बातें सुन पड़ेंगी—लोग न जाने क्या क्या लगा बुझा जायँगे। लेकिन तुम चाचाको तो पहचानते हो न? मन ही मन समझ लो। अभी मैं और कुछ प्रकाशित नहीं करता।

वेणी—मैं रमाके पास गया था।

गोवि०—हाँ, मुझे मालूम है। उसने क्या कहा?

वेणी—वे लोग तो नहीं ही जायँगी, लेकिन उनके सम्बन्धके जो और लोग हैं, उनमेंसे भी कोई न जायगा।

गोवि०—बस बस। अब और कुछ नहीं देखना है।

वेणी—लेकिन तुम लोग तो...

गोवि०—अरे भइया, तुम घबराते क्यों हो! पहले मुझे घुसने तो दो। पहले सब तैयारियाँ तो खूब अच्छी तरह करा लूँ, तभी तो—फिर श्राद्धमें क्या क्या होता है, सो तुम बाहर खड़े खड़े देखना।

वेणी—लेकिन मैं सुनता हूँ कि...

गोवि०—अरे भइया, ऐसी तो बहुत-सी बातें सुनोगे। बहुतसे साले आकर बहुत तरहकी बातें लगावेंगे। लेकिन गोविन्द चाचाको तो पहचानते हो न? बस।

(दोनोंका प्रस्थान।)

दूसरा दृश्य

[रमेशके मकानका बाहरी भाग। चंडी-मंडपवाले बरामदेमें एक ओर भैरव आचार्य बैठे हुए थान फाड़ फाड़ कर और उनकी तहें लगाकर एकपर एक रख रहे हैं। चंडीमंडपके अन्दर बैठे हुए गोविन्द गांगुली तम्बाकू पी रहे हैं और तिरछी नजरसे कपड़ोंकी संख्या गिनते जाते हैं। चारों ओर श्राद्धका आयोजन हो रहा है और जगह जगह उसकी सामग्री बिखरी पड़ी है। बहुत से लोग तरह तरहके कामोंमें लगे हुए हैं। समय तीसरा पहर।

[रमेशका प्रवेश ।]

रमेश—(गोविन्द गांगुलीसे विनयपूर्वक) अच्छा, आप आ गये ?

गोविन्द—भइया, आवेंगे क्यों नहीं ! यह तो अपना ही काम ठहरा रमेश !

[नेपथ्यमें किसीके खाँसनेका शब्द । चार पाँच लड़कों और लड़कियोंको लिये हुए खाँसते खाँसते धर्मदास चटर्जीका प्रवेश । उनके कन्धेपर मैला दुपट्टा पड़ा है । नाकके ऊपर एक जोड़ी बैंगनकी तरह बड़ा सा चश्मा लगा है जो पीछेकी तरफ डोरीसे बँधा है । सिरके बाल बिलकुल सफेद हैं । मोछोंके सफेद बाल तम्बाकूके धुएँसे ताँबेके रंगके हो गये हैं । आगे बढ़कर थोड़ी देर तक रमेशके मुँहकी ओर देखते हैं और तब बिना कुछ कहे-सुने रोने लगते हैं । रमेश पहचानता ही नहीं है कि ये कौन हैं । लेकिन जो हो, वह घबराकर उनका हाथ पकड़ लेता है । उसके हाथ पकड़ते ही—]

धर्मदास—(रोकर) नहीं बेटा रमेश, मुझे स्वप्नमें भी इस बातका ध्यान नहीं था कि तारिणी इस तरह हम लोगोंको धोखा देकर निकल जायगा । लेकिन मेरा भी ऐसे चटर्जी वंशमें जन्म नहीं हुआ है जो किसीके डरसे अपने मुँहसे कोई झूठी बात निकालूँ । तुम जानते हो कि जब मैं यहाँ आ रहा था तब रास्तेमें तुम्हारे सगे तायाके लड़के और तुम्हारे भाई वेणी घोषालके मुँहपर मैं क्या कह आया ? मैंने कहा कि रमेश जैसे श्राद्धका इन्तजाम कर रहा है वैसा श्राद्ध करना तो बड़ी बात है, इस तरफ उस तरहका श्राद्ध आज तक किसीने आँखसे भी न देखा होगा । भइया, मेरे बारेमें बहुत-से साले आ आकर तुमसे न जाने कितने तरहकी बातें कहेंगे । लेकिन तुम यह बात निश्चय समझ रखना कि यह धर्मदास केवल धर्मका ही दास है, और किसीका नहीं ।

[इतना कहकर वे गोविन्दके हाथसे हुक्का लेकर एक कश खींचते हैं और तुरन्त ही जोरसे खाँसने लगते हैं ।]

रमेश—नहीं नहीं, भला आप भी कैसी बातें करते हैं—

[उत्तरमें धर्मदास बड़बड़ाते हुए न जाने क्या क्या कह जाते हैं, लेकिन खाँसीके मारे उसका एक अक्षर भी किसीकी समझमें नहीं आता । सबसे पहले गोविन्द गांगुली ही इस घरमें आये थे, इसलिए नये जमींदारको अच्छी अच्छी बातें समझाने-बुझानेका सुयोग सबसे पहले उन्हींको प्राप्त होना चाहिए था । लेकिन जब उन्होंने देखा कि मेरा यह सुयोग नष्ट होना चाहता है, तब वे जल्दीसे उठकर खड़े हो जाते हैं ।]

गोविन्द—कल सबेरे, समझे धर्मदास भइया, जब मैं यहाँ आनेके लिए घरसे चला, तब घरसे निकल चुकने पर भी यहाँ आ न सका। वेणी लगा आवाज देने : गोविन्द चाचा, तम्बाकू तो पी जाओ। पहले तो मैंने सोचा कि तम्बाकू पी कर क्या होगा! लेकिन फिर खयाल आया कि जरा यह भी तो समझ लूँ कि वेणीके मनमे क्या है।—भइया रमेश, तुम जानते हो कि उसने क्या कहा? उसने कहा कि चाचा, मै देखता हूँ कि तुम लोग रमेशके बहुत बडे शुभचिन्तक बन गये हो। लेकिन यह तो बतलाओ कि उनके यहाँ लोग जायँ-वायँगे भी या यों ही? मैं भी भला उसे क्यो छोड़ने लगा! अरे तुम बड़े आदमी हो, तो हुआ करो। हमारा रमेश भी तो किसीसे कम नहीं है। तुम्हारे घरसे तो किसीको मुट्ठीभर चिड़वा भी मिलनेकी आशा नहीं है। मैंने कहा—वेणी बाबू, आखिर यही तो रास्ता है, जरा खडे खडे चलकर देख लो न कि कगालोंको किस तरह भोजन बाँटा जा रहा है। रमेश अभी कलका लडका है तो क्या हुआ, लेकिन कलेजा इसको कहते हैं!—लेकिन भइया धर्मदास, मैं यह फिर भी कहता हूँ कि आखिर हम लोग कर ही क्या सकते हैं! जिनका काम है, बस वही उस पारसे यह सब करा रहे हैं। तारिणी भइया एक शाप-भ्रष्ट दिग्पाल थे।

[धर्मदासकी खाँसी किसी तरह रुकती ही न थी। वे देखते कि मेरे सामने ही यह गोविन्द ऐसी अच्छी अच्छी बातें इस अपरिपक्व नव-युवक जमींदारसे कह रहा है, इसलिए और भी अच्छी तरह कहनेके प्रयत्नमें वे और भी तडफड़ाने लगे।]

गोविन्द—लेकिन भइया, तुम तो मेरे लिए कोई पराए नहीं हो, बिलकुल अपने ही हो। तुम्हारी माँ थीं मेरी खास फुफेरी बहनकी सगी भानजी। राधानगरके बनर्जीके परिवार की। यह सब तारिणी भइया जानते थे। इसलिए जब कोई काम-धन्धा होता, कोई मामला-मुकदमा करना होता, कोई गवाही-साखी देनी होती तो बस बुलाओ गोविन्दको।

धर्म०—अरे गोविन्द, क्यों व्यर्थ बकवाद कर रहे हो! ख—ख—ख—ख—मैं कोई आजका नहीं हूँ। मै क्या नहीं जानता? उस साल उन्होंने गवाही देनेके लिए बुलाया तो कहा, मेरे पास जूते नहीं हैं। नगे पैर कैसे जाऊँ? खक्—खक्—खक्। तारिणीने उसी समय ढाई रुपये खर्च करके नया जूता दिलवा

दिया और तुम वही जूता पहनकर वेणीकी तरफसे गवाही दे आये! खक्—खक्—खक्—खक्—

गोवि०—(लाल लाल आँखें करके) मैं गवाही दे आया था?

धर्म०—नहीं दे आये थे?

गोवि०—चल झूठा कहींका!

धर्म०—झूठा होगा तेरा बाप।

गोवि०—(टूटा हुआ छाता लेकर उछल पड़ता है) अबे साले।

धर्म०—(बाँसकी लाठी तानकर) इस सालेका मैं–खक्–खक्–खक्-रिश्तेमें बड़ा भाई होता हूँ कि नहीं, इसीलिए। इस सालेकी जरा अकिल तो देखो!

(फिर खाँसता है।)

गोवि०—हुँः यह साला मेरा बड़ा भाई है!

(चारों ओरसे लोग दौड़ आये। छोटे छोटे लड़के और लड़कियाँ चकित होकर देखने लगीं। रमेश जल्दीसे आकर उन दोनोंके बीचमें खड़ा हो जाता है।)

रमेश—हैं हैं, यह क्या! आप दोनों ही बड़े हैं, ब्राह्मण हैं। भला यह कैसा झगड़ा?

भैरव—(पास आकर रमेशसे) कोई चार सौ धोतियाँ तो हो गईं। क्या कुछ और चाहिए हैं?

[रमेश कोई उत्तर नहीं देता।]

भैरव—छीः गांगुलीजी, बाबूजी तो तुम लोगोंकी बातें देखकर बिलकुल अवाक् हो गये हैं। बाबूजी, आप कुछ खयाल मत कीजिएगा। ऐसा तो हुआ ही करता है। जिस घरमें कोई बड़ा काम-काज होता है, उसमें मार पीट, खून-खच्चर तककी नौबत आ जाती है और फिर सब ठीक हो जाता है। लीजिए चटर्जी, पहले जरा यह तो बतलाइए कि क्या अभी और भी धोतियाँ फाड़नी होंगीं?

गोवि०—अरे हाँ, यह तो होता ही रहता है, बहुत होता है। नहीं तो इसे वृहत् कर्म और कहा किस लिए गया है! उस साल तुम्हें याद है भैरव, यदु मुकर्जीकी लड़की रमाके तिलकके दिन सिर्फ एक सीधेके बारेमें राघव भट्टाचार्य और हारान चटर्जीमें सिर-फुड़ौअल तक हो गई थी। लेकिन भैरव भइया, मैं कहता हूँ कि भइया रमेशका यह काम ठीक नहीं हो रहा है। छोटी जातके

लोगोंको इस तरह धोतियाँ और कपड़े देना और राखमें घी डालना दोनों बराबर हैं। इसके बजाय अगर ब्राह्मणोंको एक एक जोड़ा और लड़कोंको एक एक धोती दे दी जाती तो नाम हो जाता। मैं तो कहता हूँ भइया, बस तुम यही तरकीब करो। क्यों धर्मदास भइया, तुम्हारी क्या राय है ?

धर्म०—(रमेशसे) भइया, गोविन्दने कोई बुरी तरकीब नहीं बतलाई। इन लोगोंको देना व्यर्थ है। नहीं तो शास्त्रोंमें इन लोगोंको नीच और किस लिए कहा गया है ? क्यों भइया रमेश, समझ गये न ?

रमेश—हाँ हाँ, समझता क्यों नहीं हूँ।

भैरव—तो फिर क्या इतने ही कपड़ोंसे काम हो जायगा ?

रमेश—मैं तो समझता हूँ कि नहीं होगा। अभी यह नहीं कहा जा सकता कि कितने कंगाल आवेंगे। इस लिए अच्छा तो यही है कि आप और भी दो सौ धोतियोंका इन्तजाम कर रक्खें।

गोवि०—और नहीं तो कैसे काम चलेगा!—भइया, तुम अकेले कहाँ तक थान फाड़ोगे। चलो, मैं भी चलता हूँ।

[इतना कहकर गोविन्द धोतियोंके ढेरके पास पहुँच जाते हैं और बैठकर धोतियाँ तरतीबसे रखने लगते हैं। इसी बीचमें धर्मदास अवसर देखकर रमेशको एक ओर खींच ले जाते हैं और धीरे धीरे उसके कानमें कुछ कहते हैं। उधरसे गोविन्द भी सिर उठाकर कनखियोंसे इन लोगोंकी तरफ देखते हैं।]

धर्म०—भइया, यह देश बड़ा खराब है। भंडार-वंडार किसीको सौंपकर उसका विश्वास न कर बैठना। तेल, नमक, घी, आटा, सब आधा-तिहाई खिसका देंगे! मैं अभी जाकर तुम्हारी बुआको भेजे देता हूँ। तुम्हारा एक कण भी नष्ट न होने पावेगा।

रमेश—जो आज्ञा।

[दाढ़ी-मोंछ मुड़ाये दुबले-पतले वृद्ध दीनानाथ भट्टाचार्यका प्रवेश। उनके साथ दो तीन लड़के-लड़कियाँ हैं। लड़की उन सबमें बड़ी है। वह टोरियेकी ऐसी धोती पहने है जो जगह जगहसे फटी है।]

दीनानाथ—अरे भइयाजी कहाँ है ?

गोविन्द—(खड़े होकर) आओ दीनू भइया, बैठो। हम लोगोंके बड़े भाग्य

हैं जो आज यहाँ आपके चरणोंकी धूल पड़ी है। बेचारा लड़का अकेला मरा जा रहा है, सो तुम लोग तो...

[धर्मदास आँखें तरेरकर उसकी तरफ देखते हैं।]

गोवि०—सो तुम लोग तो कोई इस तरफ आओगे नहीं भइया!

दीनू०—भइया, मैं तो यहाँ था ही नहीं। तुम्हारी बहूको लानेके लिए उसके बापके घर गया था। भइयाजी कहाँ हैं? सुना है, बहुत बड़ी तैयारी हो रही है। रास्तेमें उस गाँवकी हाटमें सुनता आ रहा हूँ कि खिलाने-पिलानेके बाद बच्चे-बूढ़े सबके हाथमें सोलह सोलह पूरियाँ और आठ आठ सन्देश दिये जायँगे।

गोवि०—(गला धीमा करके) इसके सिवा शायद सबको एक एक धोती भी दी जायगी। दीनू भइया, यही हमारे रमेश हैं। तुम चार आदमियोंके और बाप-माँके आशीर्वादसे जैसे तैसे मैं सब इन्तजाम कर ही रहा हूँ, लेकिन यह वेणी तो एक दमसे हाथ धोकर पीछे पड़ गया है। अरे मेरे ही पास उसने दो बार आदमी भेजा। खैर मेरी बात तो छोड़ दो, क्योंकि रमेशके साथ मेरा रक्तका सम्बन्ध है, लेकिन ये दीनू भइया और धर्मदास भइया भी क्या कभी तुम्हें छोड़ सकते हैं? दीनू भइया तो रास्तेसे ही खबर सुनकर दौड़े हुए आ पहुँचे हैं। अबे ओ षष्ठीचरण, तम्बाकू ले आ न। भइया रमेश, जरा इधर आओ। जरा तुमसे एक बात कह लूँ।

[नौकर आकर दीनूके हाथमें हुक्का दे जाता है। गोविन्द रमेशको खींचकर दूसरी तरफ ले जाते हैं और धीरेसे कहते हैं।]

गोवि०—शायद अन्दर धर्मदासकी स्त्री आ रही है। खबरदार भइया, खूब होशियार रहना। वह धूर्त्त ब्राह्मण चाहे कितना ही क्यों न फुसलावे, लेकिन भंडार वडार कभी उसकी औरतके हाथमें न देना। वह हरामजादी आधा तिहाई माल खिसका देगी। मैं तो कहता हूँ कि भइया, आखिर तुम्हें चिन्ता किस बातकी है? खुद तुम्हारी मामी मौजूद है। मैं अभी जाते ही उसको भेज देता हूँ। वह जिस तरह अपना घर समझकर चीजोंकी देखभाल करेगी, उस तरह क्या और कोई कर सकेगा? या कभी कर सकता है?

[दो बच्चे आकर दीनूके कन्धेपर झूल जाते हैं।]

बच्चे—बाबा सन्देश खायँगे।

दीनू—(एक बार रमेशकी ओर और एक बार गोविन्दकी ओर देखकर) सन्देश कहाँसे लाऊँ रे, सन्देश कहाँ हैं ?

[दीनूकी लड़की उँगलीसे भीतरकी ओर इशारा करती है।]

दीनूकी लड़की—बाबा वह देखो, वह जो हैं...

[और सब बच्चे भी धर्मदासको घेर लेते हैं।]

सब बच्चे—हमें भी...

रमेश—(आगे बढ़कर) अच्छा अच्छा। आचार्यजी, सब लड़के तीसरे पहरके घरसे निकले हुए हैं। कोई घरसे खाकर तो आया ही नहीं है। (अन्दर खड़े हुए हलवाईसे) अरे क्या नाम है तुम्हारा ? जाओ, सन्देशका एक थाल इधर ले आओ। आचार्यजी, देखिए देर न होने पावे।

[भैरव आचार्य अन्दर चले जाते हैं और थोड़ी ही देर बाद हलवाई सन्देशका थाल ले आता है। उसके आते ही सब लड़के उस थालपर टूट पड़ते हैं और इतना व्यस्त कर डालते हैं कि किसीको सन्देश बाँटनेका अवसर ही नहीं देते। लड़कोंको खाते देखकर दीनानाथकी शुष्क दृष्टि भी सजल और तीव्र हो जाती है।]

दीनू—अरे ओ खेंदी, सन्देश खा तो खूब रही है। लेकिन जरा बतला तो सही कि कैसे बने हैं ?

खेंदी—बहुत बढ़िया बने हैं बाबा। (खाने लगती है।)

दीनू—(कुछ हँसकर और सिर हिलाकर) अरे तुम लोगोंकी पसन्दका क्या कहना है ! बस मीठी हुई कि चीज बढ़िया हो जाती है। हाँ जी, हलवाई, तुमने यह कड़ाही क्यों उतार दी ? क्यों गोविन्द भइया, अभी तो कुछ धूप है, तुम्हें नहीं मालूम होती ?

हलवाई—जी हाँ, है क्यों नहीं। अभी बहुत दिन बाकी है। अभी सन्ध्या-पूजाका...

दीनू—अच्छा, एक सन्देश जरा गोविन्द भइयाको तो दो, जरा चखकर देखें कि तुम लोग कलकत्तेके कैसे कारीगर हो...

[हलवाई गोविन्द और दीनू दोनोंको सन्देश देने लगता है।]

दीनू—अरे नहीं नहीं, मुझे क्यों दे रहे हो ? अच्छा, आधा ही देना, आधसे ज्यादा नहीं ! (हुक्का रखकर) अरे ओ षष्ठीचरण, जरा जल तो ला भइया, हाथ धो लूँ।

रमेश—(अन्दरकी ओर देखकर) षष्ठी, ज़रा अन्दरसे, चार-पाँच तश्तरियाँ तो ले आ।

गोवि०—सन्देश देखनेसे ही मालूम होते हैं कि अच्छे बने हैं। क्यों जी हलवाई, मालूम होता है कि पाक कुछ नरम ही रखा है?

हलवाई—जी हाँ, इस घानका पाक कुछ नरम ही रखा है।

गोवि०—(हँसकर) अरे हम लाग जानते हैं न। आँखसे देखते ही बतला सकते हैं कि कौन-सी चीज कैसी बनी है।

हलवाई—जी, आप लोग नहीं समझेंगे तो और कौन समझेगा!

[षष्ठीचरण और उसके साथ एक दूसरा नौकर तश्तरियाँ और पानीके गिलास आदि लाकर रखता है। हलवाई सन्देशका थाल ले आता है और ब्राह्मणोंकी तश्तरियोंमें परोसने लगता है। सब चुप हैं, किसीके मुँहसे कोई बात नहीं निकलती। लड़के लड़कियाँ, धर्मदास, दीनू, गोविन्द सब निगलने लगते हैं। देखते देखते सारा थाल साफ हो जाता है।]

दीनू—हाँ, बेशक कलकत्तेका कारीगर है। क्यों धर्मदास भइया, क्या कहते हो?

[धर्मदासका कण्ठ-स्वर सन्देशके तालको भेदकर ठीक तरहसे बाहर नहीं निकला, लेकिन फिर भी पता चल गया कि दीनूसे उनका मत-भेद नहीं है।]

गोविन्द—(साँस लेकर) हाँ, यह जरूर उस्तादोंका हाथ है!

हलवाई—महाराज, आप लोगोंने जब कष्ट ही किया है तब जरा मोतीचूरके लड्डुओंकी भी इसी तरह परख कर दीजिए।

दीनू—मोतीचूर! कहाँ है, ले आओ भला।

हलवाई—लीजिए, अभी लाता हूँ।

[पलक मारते ही हलवाई मोतीचूरके लड्डुओंका एक थाल ले आता है और ब्राह्मणोंकी तश्तरियोंमें परोस देता है। मोतीचूरके लड्डुओंको खतम होते भी देर नहीं लगती।]

दीनू—(अपनी लड़कीकी ओर हाथ बढ़ाकर) अरे ओ खेंदी, ले बेटी, ये दो लड्डू तो ले ले।

खेंदी—नहीं बाबूजी, अब मुझसे नहीं खाये जायँगे।

दीनू—अर खा जायगी, खा जायगी। जरा एक घूँट पानी पीकर गला तर कर ले। मुँह बँध गया होगा मिठाईके मारे! न खाया जाय तो आँचलमें बाँध ले। कल सवेरे उठकर खा लीजियो।

[जबरदस्ती लड़कीके हाथमें लड्डू दे देता है।]

दीनू—(हलवाईसे) हाँ भइया, इसको कहते हैं खिलाना! बिलकुल अमृत है। खूब बढ़िया बने हैं। (रमेशसे) क्यों भइयाजी, दो तरहकी मिठाइयाँ बनवाई हैं न?

हलवाई—जी नहीं, रस-गुल्ला, खीरमोहन...

दीनू—हें! खीर मोहन भी? अरे कहाँ, वह तो तुमने निकाला ही नहीं। (विस्मित होकर और रमेशकी तरफ देखकर) हाँ एक बार खाया था राधानगरके बोसके यहाँ। आज भी मानों जबानपर लगा हुआ है। भइया, मैं कहूँगा तो तुम विश्वास नहीं करोगे, लेकिन खीरमोहन मुझे बहुत ही अच्छा लगता है।

रमेश—(हँसकर) जी नहीं, भला इसमें अविश्वास करनेकी कौन-सी बात है। अरे ओ षष्ठी, देख, अन्दर शायद आचार्य महाराज हैं; जाकर उनसे कह दे कि थोड़ा खीरमोहन लेते आवें।

(षष्ठीचरणका प्रस्थान।)

गोवि०—(कुछ उद्विग्न स्वरसे) हैं? क्या मिठाइयाँ सब यों ही बाहर खुली पड़ी हैं? नहीं नहीं, यह बात तो ठीक नहीं है।

धर्म०—चाबी, चाबी! भंडारकी चाबी किसके पास है?

गोवि०—अरे कहीं उस भैरव आचार्यके हाथमें तो नहीं है?

[षष्ठीचरणका प्रवेश]

षष्ठी०—बाबूजी, अब इस वक्त भंडार नहीं खुलेगा। खीरमोहन नहीं मिल सकेगा।

रमेश—अरे जाकर कह दे कि हमने माँगा है।

गोवि०—देखी धर्मदास, इस आचार्यकी अक्किल! माँसे ज्यादा दरद मौसीको हो रहा है। इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि...

षष्ठी०—इसमें आचार्यका क्या दोष है! उस घरसे माँजीने आकर भंडार बन्द कर दिया है। यह उन्हींका हुक्म है।

धर्मदास और गोविन्द—कौन आई हैं, वेणी बाबूकी माँ? उस घरकी मालिकिन?

रमेश—क्या ताईजी आई हैं?

षष्ठी०—जी हाँ, उन्होंने आते ही छोटे बड़े दोनों भंडारोंका ताला बन्द कर दिया है। चाबी उन्हींके आँचलमें है।

गोवि०—देखा धर्मदास भइया, क्या हो रहा है? मैं पूछता हूँ मतलब समझ रहे हो न?

दीनू—अरे भाई, इसका मतलब समझना कौन बहुत मुश्किल है। ताला बन्द करके चाबी ले गई हैं, इसका मतलब यही है कि भंडार और किसीके हाथमें न पड़ने पावे। वे सभी कुछ तो जानती हैं।

गोवि०—तुम जब कुछ समझते-बूझते नहीं, तब बोला क्यों करते हो? तुम इन सब बातोंको क्या जानो जो जल्दीसे माने-मतलब निकालने बैठ जाते हो?

दीनू—अरे आखिर इसमें समझने बूझनेकी है ही कौन-सी बात? सुन तो रहे हो कि मालिकिनने खुद आकर ताला बन्द कर दिया है। इसमें और कोई क्या कह सकता है?

गोवि०—भट्टाचार्य, अब घर जाओ न। जिस कामके लिए घर-भर मिलकर दौड़े आये थे, वह तो हो गया। सब लोगोंने मिलकर खाया भी और बाँधा भी। हम लोगोंको बहुतसे काम हैं।

रमेश—गांगुलीजी, आपको हो क्या गया है? आप खामख्वाह चाहे जिसका अपमान क्यों करते हैं?

[डाँट खाकर गोविन्द कुछ लज्जित हो जाते हैं। फिर सूखी हँसी हँसकर—]

गोवि०—अरे भइया, अपमान मैंने किसका किया? अच्छा, जरा उन्हींसे पूछ लो कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह ठीक है या नहीं। अगर वह डाल डाल घूमें तो मैं पात पात चलनेवाला हूँ। देखा धर्मदास, इस दीनू ब्राह्मणका हौसला? अच्छा...

रमेश—'अच्छा' क्या?

दीनू—(रमेशसे) नहीं भइया, गोविन्द ठीक ही कह रहे हैं। यह तो सभी जानते हैं कि मैं बहुत गरीब हूँ। मेरे पास इन लोगोंकी तरह जमीन-जायदाद और खेती बारी तो कुछ है नहीं। इधर उधरसे माँग जाँचकर किसी

तरह दिन बिताता हूँ। भगवानने इतनी शक्ति तो मुझे दी ही नहीं कि मैं लड़के-वालोंको अच्छी अच्छी चीजें खिला सकूँ। इसी लिए जब बड़े आदमियोंके घर कोई काम-काज होता है, तब वहीं खा पीकर ये सन्तुष्ट हो लेते हैं। भइया, तुम अपने मनमें कुछ खयाल मत करना। जब तारिणी भइया जीते थे, तब हम लोगोंको बड़े चावसे खिलाते-पिलाते थे।

[सब लोगोंके देखते देखते दीनूकी आँखोंसे दो बूँद आँसू निकलकर जमीन पर गिरते हैं। दीनू उन्हें अपने मैले और फटे दुपट्टेसे पोंछ लेता है।]

गोवि०—वाह क्या कहना है! तारिणी भइया खाली तुम्हींको बड़े चावसे खिलाते-पिलाते थे! धर्मदास भइया, सुनते हो इनकी बातें?

दीनू—अरे गोविन्द, मैं क्या यह कह रहा हूँ? मेरे कहनेका मतलब तो यह है कि मेरे जैसे गरीब और दुःखी लोग कभी तारिणी भइयाके यहाँसे खाली हाथ नहीं लौटते थे।

रमेश—भट्टाचार्यजी, दो दिन आप मुझपर कृपा रखिएगा। और अगर खैदीकी माँके पैरोंकी धूल इस मकानको प्राप्त हो तो मैं अपना बड़ा भाग्य समझूँगा।

दीनू—भइया रमेश, मैं बहुत ही गरीब हूँ, बहुत ही दुःखी हूँ। तुम तो इस तरहसे कहते हो कि मैं मारे लज्जाके मरा जाता हूँ।

[नौकर आता है।]

नौकर—बाबूजी, माँजी आपको अन्दर बुला रही हैं।

रमेश—अच्छा आता हूँ।

दीनू—अच्छा भइया, तो अब इस समय हम लोग जाते हैं।

रमेश—अच्छी बात है। लेकिन मेरी प्रार्थना भूल मत जाइएगा।

दीनू—नहीं भइया, प्रार्थना क्यों कहते हो, यह तो तुम्हारी दया है।

(लड़के-लड़कियोंको साथ लेकर दीनूका प्रस्थान।)

गोवि०—भइया रमेश, तो फिर अब मैं भी चलता हूँ। सन्ध्या-पूजा, ठाकुरजीकी आरती...

रमेश—लेकिन गांगुली जी...

गोवि०—अरे भइया, तुम्हें कुछ कहनेकी जरूरत नहीं। यह तो हमारा अपना काम है। तुम न भी बुलाते, तो भी हमें आप ही आकर सब कुछ

करना पड़ता। कल सबेरे जब मैं तुम्हारी मामीको यहाँ भेज दूँगा, तब निश्चिन्त होऊँगा।

धर्म०—गोविन्द, तुम व्यर्थकी बातें बहुत करते हो।

गोवि०—कोई चिन्ता नहीं रमेश। भंडार वंडार जो कुछ है...

धर्म०—भला, भडारके लिए तुम्हें इतनी चिन्ता क्यों हो रही है? वह सब तो मैं पहलेसे ही ठीक कर चुका हूँ।

गोवि०—अरे भइया, यह तो हम लोगोंका अपना काम ठहरा। मैंने और भइया धर्मदासने, हम दोनोंने तुम्हारे बुलानेकी राह नहीं देखी—आप ही बिना बुलाये आ पहुँचे हैं। आ पहुँचे कि नहीं?

धर्म०—सुनो रमेश, हम लोग कोई वेणी घोषाल नहीं हैं। हम लोगोंकी असलियत ठीक है।

रमेश—अरे आप लोग यह क्या कह रहे हैं!

[रमेशकी ताई आड़मेंसे जरा-सा मुँह बाहर निकालकर कहती है—]

ताई—रमेश, ये लोग इसी तरह बोलते हैं। न तो पढ़े-लिखे हैं और न अच्छी सगत है, इसलिए ये जानते भी नहीं कि ये क्या बक गये।

[गोविन्द और धर्मदासका जल्दीसे प्रस्थान]

रमेश—ताईजी!

ताई—हाँ भईया, मैं हूँ। मुझे पहचानते तो हो?

[कहती हुई ताईजी सामने आ खड़ी होती हैं। उनकी अवस्था पचाससे कम नहीं है, लेकिन देखनेमें वे किसी तरह चालीससे अधिककी नहीं जान पड़तीं। उनके सिरके बाल छोटे छोटे और कटे हुए हैं और थोड़ेसे बाल बल खाकर माथेपर आ पडे हैं। किसी समय जिस रूपकी इस प्रदेशमें बहुत अधिक प्रसिद्धि थी, आज भी वह अनिन्द्य रूप उनके सुडौल और भरे हुए शरीरको छोड़कर कहीं जा नहीं सका है। आज भी ऐसा जान पड़ता है कि उनके अवयव किसी अच्छे शिल्पीकी साधनाके सुन्दर फल हैं।]

रमेश—जिस लड़केको किसी समय तुमने पाल-पोसकर बड़ा किया था ताईजी, क्या उसीके सम्बन्धमें यह समझती हो कि वह जब बड़ा हो कर घर लौटेगा, तब तुम्हें पहचान भी न सकेगा?

ताई—नहीं रमेश, मैंने यह आशंका नहीं की थी। लेकिन फिर भी भइया, बिना तुम्हारे मुँहसे यह सुने नहीं रहा गया कि तुम अपनी ताईको भूले नहीं हो।

रमेश—नहीं ताईजी, खूब याद है और बड़ी इज्जतके साथ याद है। लेकिन मैं जो कुछ कर सकता, स्वयं ही कर लेता। तुमने क्यों इस घरमें आनेका कष्ट किया?

ताई—बेटा, तुम तो मुझे बुलाकर लाये नहीं, जो मैं तुम्हें इसकी कैफियत दूँ।

रमेश—बुला कैसे लाता ताई! सबसे पहले तो मैं माँ समझकर तुम्हारी ही गोदमें दौड़ा गया था। लेकिन ताई, तुमने तो कहला दिया कि घरपर नहीं हैं और मुझसे भेंट तक नहीं की।

ताई—मालूम होता है कि रमेश, इसीलिए तुम रूठ गये हो और इसी लिए आज मुझे अपने घरसे विदा कर देना चाहते हो।

रमेश—मेरे रूठनेकी बात कहती हो! जिसके माँ नहीं, बाप नहीं, जो स्वयं अपनी ही जन्म-भूमिमें निराश्रय और विदेशी है और बिना किसी कसूरके ही जिसे पास-पड़ोसके और परिवारके लोग घरसे दूर कर रहे हैं, भला तुम्हीं बतलाओ ताईजी, उसके रूठनेका क्या मूल्य हो सकता है?

ताई—क्यों रमेश, क्या मेरे निकट भी उसका कोई मूल्य नहीं है?

रमेश—नहीं, नहीं है। आज तुमने अपने लड़केको ही केवल लड़का समझ लिया है। और यह बात भूल गई हो कि एक दिन था जब तुमने एक ऐसे लड़केको भी, जिसकी माँ मर गई थी, ठीक उसी तरह अपना लड़का समझ कर पाला-पोसा था।

ताई—क्यों रमेश, क्या तुम इसी तरह शूल बेध बेधकर बातें करोगे? क्या मैंने तुम दोनोंको इसीलिए पाला-पोसा था कि तुम लोगोंके लिए मैं घरमें भी और बाहर भी इस तरह दण्ड भोगूँगी?

रमेश—घरमें भी और बाहर भी? यही तो जान पड़ता है! (हठात् पैरोंके पास घुटनोंके बल बैठकर) ताईजी, तुम मुझे क्षमा करो। मेरे अन्दर जो आग लगी हुई है, उसके कारण मैं तुम्हारी इस बाजूको नहीं देख सका।

[ताई रमेशको उठाकर दाहिने हाथसे उसकी ठोढ़ी छूती है।]

ताई—हाँ बेटा, मैं जानती हूँ।

रमेश—लेकिन अब तुम इस मकानपर मत आना। मैं और सब कुछ सह लूँगा, लेकिन ताई, मुझसे यह नहीं सहा जायगा कि तुम मेरे लिए दुःख पाओ।

ताई—रमेश, यह ठीक नहीं है। यदि दुःख सहना ही कर्तव्य हो तो फिर वह तुम भी सहोगे और मैं भी सहूँगी। यदि झाँसा देकर आराम पानेकी चेष्टा की जायगी तो उसके छिद्रमेंसे केवल आराम ही न निकल जायगा, बल्कि और भी अधिक दुःख उसमें घुस पड़ेगा बेटा। तुम मुझे रोकनेका विचार मत करो। और अगर मना भी करोगे तो उसे मैं सुनने ही क्यों लगी ?

रमेश—ताईजी, मैं तुम्हें भूल गया था, इसी लिए मना करनेकी गुस्ताखी की थी। अब तुम मेरी बात मत सुनो और जो अच्छा जान पड़े, वही करो।

ताई—हाँ, वही तो मैं करूँगी।

रमेश—हाँ हाँ, करो। न जाने कितनी आँधियाँ, कितने तूफान और कितने कष्टपूर्ण समय तुम्हारे ऊपरसे होकर निकल गये हैं। बीच-बीचमें दूरसे ही उनकी खबर मिलती रही है। लेकिन कोई तुम्हें बदल नहीं सका। तेजकी कभी न बुझनेवाली आग तुम्हारे अन्दर उसी तरह धक् धक् जल रही है।

ताई—बस बस, चुप रहो। छोटे मुँह बड़ी बात मत कहो। अच्छा, यह बतलाओ कि अपने बड़े भइयाके पास भी गये थे ?

(रमेश सिर झुकाकर चुप रहता है।)

ताई—घरपर नहीं है, कहकर शायद उसने भेट नहीं की।

[रमेश फिर भी उसी तरह चुप रहता है।]

ताई—न करने दो, फिर भी एक बार और—(थोड़ी देर तक चुप रहकर) मैं जानती हूँ कि वह तुमसे खुश नहीं है, लेकिन अपना काम तो तुम्हें करना ही चाहिए। वह बड़ा भाई है। उसके सामने झुकनेमें कोई लज्जाकी बात नहीं है। इसके सिवा बेटा, मनुष्यके लिए यह ऐसा कठिन समय है कि ऐरे गैरेके भी हाथ-पैर जोड़कर सब झगड़ा मिटा लेना ही मनुष्यत्व है। मेरे राजा बेटा, एक बार फिर उसके पास जाओ। इस समय शायद वह मकानपर ही होगा।

रमेश—ताईजी, अगर तुम्हारा हुक्म होगा तो जरूर जाऊँगा।

ताई—और देखो, एक बार जरा रमाके यहाँ भी चले जाना।

रमेश—गया था।

ताई—गये थे ? उसने तुम्हे पहचान तो लिया था ?

रमेश—हाँ, मै समझता हूँ कि पहचान लिया था। नहीं तो अपमान करके मुझे घरसे क्यों निकाल देती ?

ताई—अपमान करके निकाल दिया ? रमाने ?

रमेश—और मालूम होता है कि उतने अपमानसे भी मन नहीं भरा, इसी लिए यह भी कह दिया कि अगर फिर यहाँ आओगे तो दरबानसे धक्का देकर निकलवा दूँगी।

ताई—स्वयं रमाने कहा था ? रमेश, स्वयं अपने कानोंसे सुननेपर भी मुझे इस बातपर विश्वास नहीं होगा।

रमेश—ताईजी, बड़े भइया भी तो वहाँ मौजूद थे। उन्हींसे पूछ लेना।

ताई—वेणी भी था ? तब तो हो सकता है। (कुछ ठहरकर) रमेश क्या तुम ठीक कह रहे हो कि रमाने कहा था कि फिर घरमें आओगे तो दरबानसे निकलवा दूँगी ? बेटा, मुझे धोखेमें न डालना, ठीक ठीक बतलाना।

रमेश—हाँ ताईजी, कहा था। लेकिन उसने यह स्वय न कहकर, उसकी न जाने कौन मौसी जो है, उससे कहलाया था।

ताई—(ठढी साँस लेकर) ओह ! ऐसा कहो। और नहीं तो फिर रमेश, रात भी झूठी हो जायगी और दिन भी झूठा हो जायगा। अगर कोई उसके गलेपर छुरी भी रख देता तो भी वह इतनी बुरी बात तुमसे न कह सकती ? तो यह उसकी मौसीने कहा, उसने नहीं।

रमेश—तो क्या तुम उसके भी यहाँ जानेकी मुझे आज्ञा देती हो ताईजी। रमाको तुम इतना जानती हो ?

ताई—हाँ जानती तो हूँ, लेकिन अब मैं जानेके लिए नहीं कहूँगी। तुम्हारे पिताके साथ बहुत दिन तक उसके मामले-मुकदमे चलते रहे हैं। अगर उसे दुश्मन कहा जाय तो भी इसमें कुछ झूठ नहीं है। तो भी मै जानती हूँ कि वह बात रमा नहीं कह सकती। बेटा, वह तो ऐसी लड़की है कि लाखों करोड़ोंमें भी ढूँढ़नेपर भी न मिलेगी। वह है, इसीलिए इस गाँवमें थोड़ा बहुत धर्म बचा हुआ है।

रमेश—लेकिन उसे देखकर तो यह बात मेरी समझमें नहीं आई।

ताई—सहसा आ भी नहीं सकती। तो भी रमेश, है यह बात बिलकुल ठीक। पर, जब वहाँ जाना हो ही नहीं सकता, तब फिर उसकी चिन्ता करनेसे

कोई लाभ नहीं है। लेकिन बेटा, अब तक जो लोग यहाँ मौजूद थे और जो मेरे आते ही यहाँसे खिसक गये, उन लोगोंका तुम कभी विश्वास नहीं करना। मैं उन्हें पहचानती हूँ।

रमेश—लेकिन ताईजी, इस विपत्तिके समय वही लोग तो मेरे सबसे ज्यादा अपने हैं। मैं उन लोगोंका विश्वास न करूँ तो फिर और किनका करूँ?

ताई—बेटा, यही तो सोच रही हूँ कि आखिर इस बातका क्या जवाब दूँ! अच्छा तो बतलाओ कि निमन्त्रणकी फरद तैयार हो गई है?

रमेश—नहीं, अभी तो नहीं हुई।

ताई—देखो रमेश, उसे जरा सोच-समझकर तैयार करना। इस गाँवमें, बल्कि यहीं क्यों सभी गाँवोंमें, यही हाल है। यह उसके साथ बैठकर नहीं खाता, वह इसके साथ बात नहीं करता। जब किसीके यहाँ कोई काज आ पड़ता है, तब उसकी चिन्ताओंका कोई अन्त नहीं रह जाता। यह निश्चय करनेसे कठिन और कोई काम नहीं है कि किसे बाद किया जाय और किसे रखा जाय।

रमेश—लेकिन आखिर ताईजी, ऐसा क्यों होता है?

ताई—बेटा, इसमें बहुत-सी बातें हैं। अगर यहाँ रहोगे तो आप ही सब मालूम हो जायगा। किसीका तो सचमुच ही कोई दोष या अपराध है, और किसीकी झूठ मूठकी ही बदनामी है। और फिर मामलों-मुकदमों और झूठी गवाही-साखियोंके कारण भी लोगोंके दल बन गये हैं। रमेश, अगर मैं और दो दिन पहले आई होती, तो कभी तुम्हें इतनी तैयारियाँ न करने देती। अब तो केवल यही सोच रही हूँ कि आखिर उस दिन क्या होगा।

[इतना कहकर ताईजी ठढी साँस लेती हैं।]

रमेश—ताईजी, तुम्हारी इस ठंढी साँसका मतलब समझना कठिन है। लेकिन मेरे साथ तो इसका कोई सरोकार नहीं है। मुझे तो परदेसी ही समझना चाहिए। न तो किसीके साथ मेरी दुश्मनी है और न मैं किसी दलसे ही कोई मतलब रखता हूँ। मुझसे किसीका भी अपमान न हो सकेगा। मैं तो सबको ही इज्जत और खातिरसे बुला लाऊँगा।

ताई—हाँ, उचित तो यही है। लेकिन जो हो, बेटा, सब लोगोंकी राय लेकर ही यह काम करना। नहीं तो बहुत गड़बड़ी हो जायगी। माता विपद्तारिणी!

रमेश—तो क्या तुम अभी चली जा रही हो ?

ताई—नहीं, अभी नहीं। अभी एक दो काम पड़े हुए हैं। उन सबको निवटा लूँगी तब जाऊँगी। लेकिन रमेश, ताली मेरे पास रहेगी। कल सबेरे मैं आप ही आकर भंडार खोलूँगी।

(प्रस्थान)

[धर्मदास, गोविन्द और परान हालदारका प्रवेश।]

गोविन्द—(रमेशसे) भइया, देखो मैं इन परान मामाको किसी तरह घर पकड़कर ले आया हूँ। यह क्या आना चाहते थे ? लेकिन मैं भी तो छोड़नेवाला नहीं हूँ। मैंने कहा कि क्या खाली वेणी ही जमींदार है और हमारा भानजा रमेश जमींदार नहीं है ? (ऊपरकी तरफ देखकर)—तारिणी भइया, तुम स्वर्गमें बैठे हुए सब कुछ देख-सुन रहे हो। लेकिन मैं तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि अगर मैं इसी आँगनमें वेणीको बुलाकर उससे नाक न रगड़वाऊँ तो मेरा नाम गोविन्द गागुली नहीं।

धर्मदास—अरे गोविन्द, तुम जरा सबर तो करो। (खाँसते हुए) यह सब मैं ठीक कर लूँगा।

[अकस्मात् वेणी घोपालका प्रवेश।]

वेणी—यह तो रमेश है ! मै एक बहुत जरूरी कामसे आया हूँ। माँ आई हैं क्या ?

गोविन्द—आयँगी क्यों नहीं भइया, सौ बार आयँगी। अरे यह तो तुम्हारा ही घर है। इसीलिए तो मैं रमेश भइयासे सबेरेसे कह रहा हूँ कि रमेश, सारे लड़ाई-झगड़े तारिणी भइयाके साथ गये,—उन्हें जाने दो। अब वे क्यों रहें ? तुम दोनों भाई एक हो जाओ, हम लोग भी देखकर अपनी आँखें ठंढी करें। इसके सिवा जब बड़ी मालकिन खुद ही यहाँ आ गई हैं, तब...

वेणी—माँ आई हैं ?

गोवि०—सिर्फ आना ही कैसा, भंडार-वंडार और काम-धन्धा जो कुछ है, सब वही तो कर रही हैं। और अगर वे नहीं करेंगी, तो और कौन करेगा ?

(सब लोग चुप रहते हैं।)

गोवि०—(ठंढी साँस लेकर) इस गाँवमें बड़ी मालकिनके ऐसा और कौन है ? या कभी होगा ? ना। वेणी बाबू, तुम्हारे सामने कहनेसे तो यह समझा

जायगा कि खुशामद करता है, लेकिन कोई कुछ भी कहे अगर गाँव-भरमें कोई लक्ष्मी है, तो वह तुम्हारी माँ है। ऐसी माँ भला किसको मिलती है?

[इतना कहकर फिर एक ठढी साँस लेते हैं।]

वेणी—अच्छा...

गोवि०—सिर्फ अच्छा नहीं, वेणी बाबू, तुम्हें आना पड़ेगा, करना पड़ेगा, सारा भार तुम्हारे ही ऊपर है। अच्छा, आप सब तो यहाँ मौजूद ही हैं। क्यों न अब उन लोगोंकी फरद तैयार कर ली जाय जिन लोगोंको न्यौता देना है। क्या कहते हो रमेश भइया? क्यों हालदार मामा, ठीक है न? धर्मदास भइया, इस समय चुप रहनेसे काम नहीं चलेगा। तुम तो सब जानते हो कि किसे न्यौता देना होगा और किसे बाद करना होगा।

रमेश—बड़े भइया, अगर एक बार आप अपने चरणोंकी धूल दे सकें—

वेणी—जब माँ आ गई हैं, तब मेरा आना और न आना...क्यों गोविन्द चाचा, क्या कहते हो?

रमेश—बड़े भइया, मैं आपको परेशान नहीं करना चाहता, लेकिन अगर असुविधा न हो, तो एक बार आकर देख-सुन जरूर जाइएगा।

वेणी—हाँ, यह तो ठीक है। जब माँ आ गई हैं, तब मेरा आना और न आना...क्या कहते हो हालदार मामा? हाँ तो रमेश, जरा माँसे जल्दी आनेको कह देना। बहुत जरूरी काम है। इस समय ठहरनेका मौका नहीं है। सब रिआया...

(कहते कहते वेणीका जल्दीसे प्रस्थान।)

गोवि०—(नेपथ्यकी ओर गला बढ़ाकर और अच्छी तरह देख लेनेपर) अरे वेणी घोषाल, अगर तुम पत्ते पत्तेपर चलते हो तो मैं पत्तोंकी नस नसपर चलता हूँ। मेरा नाम गोविन्द गांगुली है। अपनी आँखसे देखनेके लिए आये थे कि माँ आई है या नहीं। मैं जैसे कुछ समझता ही नहीं! (रमेशसे) और देखा न भइया रमेश, मैंने कैसी बढ़िया, मीठी और मुलायम बातें सुना दीं? बिलकुल मिसरीकी छुरी! अब यह नहीं कह सकते कि हमारी खातिर नहीं हुई। नहीं तो लोगोंसे कहता फिरता कि रमेशके बारेमें तो, खैर मान लिया कि वह लड़का है, लेकिन उसके मामा गोविन्द गांगुली तो वहाँ मौजूद थे! भइया, बड़े काम-काजमें मालिक होकर

बैठना कोई सहज काम नहीं है। एक एक चाल सोचते सोचते सिरमें चक्कर आने लगता है!

धर्म०—गोविन्द, तुम बहुत बकवाद करते हो। अब चुप रहो न!

[एक तरफसे सुकुमारी और उसकी माँ क्षान्त आकर घरके अन्दर चली जाती हैं। परान हालदार बहुत तेज निगाहसे उनकी तरफ देखते हैं। थोड़ी देरमें नौकर षष्ठीचरण आता है।]

परान—अन्दर ये कौन गई हैं रे?

षष्ठी०—वही क्षान्त बाम्हनी और उसकी लड़की।

परान—मैं जो सोचता था, वही हुआ। आखिर उन लोगोंको घरमें घुसने किसने दिया?

षष्ठी०—आचार्यजी बुला लाये हैं। दो दिनसे वे ही तो सब काम-काज कर रही हैं।

परान—अगर वे खाने-पीनेकी चीजें छूएँगी तो कोई ब्राह्मण यहाँ पानी तक न पीएगा।

[क्षान्त शायद आड़में खड़ी हुई सुन रही थी, इसलिए वह तुरन्त बाहर निकल आती है।]

क्षान्त—आखिर मैं भी सुनूँ हालदार महाराज कि ऐसा क्यों होगा? (रमेशसे) हाँ भइया, तुम भी तो आखिर गाँवके एक जमींदार हो। क्या सारा दोष इसी क्षान्त बाम्हनीकी लड़कीका ही है? हम लोगोंके सिरपर कोई नहीं है तो क्या इसके लिए जितनी बार जी चाहे, उतनी ही बार दड दोगे? जब मुकुर्जीके यहाँ पीपलकी पूजा-प्रतिष्ठा हुई थी तब (गोविन्दकी ओर उँगली दिखाकर) क्या इन्होंने दस रुपया जुरमाना अदा नहीं कर लिया था? सारे गाँवकी मानस-पूजाके नामसे क्या इन्होंने हमसे चार बकरोंका दाम नहीं रखवा लिया था? तब फिर एक ही बातके लिए आखिर ये कै बार न्याय करना चाहते हैं?

गोवि०—क्षान्त मौसी, अगर तुमने मेरा नाम लिया है तो भाई, मैं तो सच बात ही कहूँगा। यह तो देश-भरके लोग जानते हैं कि सिर्फ किसीकी खातिरसे कोई बात कहनेवाले गोविन्द गागुली नहीं हैं। तुम्हारी लड़कीका प्रायश्चित्त भी हो गया है और हमने उसे सामाजिक दंड भी दे दिया है। यह सब मैं मानता हूँ,

लेकिन यज्ञमें लकड़ी देनेका हुकम तो हम लोगोंने दिया नहीं है। अगर वह मर जायगी तो उसे जलानेके लिए हम लोग अपनी कन्धा देंगे, किन्तु—

क्षान्त—मरनेपर तुम अपनी लड़कीको कन्धेपर उठाकर जलानेके लिए ले जाना बेटा, मेरी लड़कीकी तुम्हें फिकर करनेकी जरूरत नहीं। और क्यों गोविन्द, तुम अपनी छातीपर हाथ रखकर क्यों नहीं कहते ? तुम्हें अपनी छोटी भौजाईके काशीवासकी याद नहीं आती ? और ये जो हालदारजी हैं, इनकी समधिनकी जुलाहेके साथ बदनामी नहीं फैली थी ? ये सब शायद बड़े आदमियोंकी बड़ी बातें हैं, क्यों ?

गोवि०—क्यों री हरामज़ादी...

क्षान्त—(आगे बढ़कर) मारोगे क्या ? अगर क्षान्त बाम्हनीको छेड़ोगे तो सारे गाँवका भडा फूट जायगा। बस इतनेसे ही काम चल जायगा या अभी कुछ और बतलाऊँ ?

[भैरव आचार्यका जल्दीसे प्रवेश]

भैरव—बस बस मौसी, इतनेसे ही चल जायगा। और कुछ कहनेकी जरूरत नहीं। (अन्दरकी ओर देखकर) चलो बहन सुकुमारी, और आओ मौसी, तुम भी अन्दर चलकर बैठो।

[भैरव और क्षान्तका प्रस्थान]

गोवि०—देखते हो न परान मामा, हम लोगोंका अपमान कराके उन लोगोंको अन्दर बैठानेके लिए ले गया है ! देखी भैरवकी हिमाकत ! अच्छा...

परान—अब रमेश इस बातकी कैफियत दें कि बिना हम लोगोंके हुकमके इन दोनों दुष्टा स्त्रियोंको क्यों इन्होंने घरके अन्दर घुसने दिया। नहीं तो हम लोगोंमेंसे कोई यहाँ पानी न पीएगा।

ताई—(दरवाजेके पास आकर) रमेश !

रमेश—ताईजी, तुम अभी तक यहीं हो ?

ताई—हाँ, हूँ तो। गोविन्द गांगुलीसे कह दो कि क्षान्त और सुकुमारीको आदरके साथ मैं बुला लाई हूँ, आचार्यजी नहीं। खाहमख्वाह उनका अपमान करनेकी कोई जरूरत नहीं थी।

परान—लेकिन जब तक वे यहाँसे निकाल न दी जायँगी, तब तक हम लोगोंमेंसे कोई यहाँ पानी न पीएगा।

ताई—यह बात तो परसों होगी। मैं मना कर देती हूँ कि आज मेरे घरमें हल्ला-गुल्ला और लड़ाई-झगड़ा करनेकी जरूरत नहीं। मैं सबको ही न्यौता दूँगी, किसीको बाद नहीं कर सकूँगी।

पराण—लेकिन फिर हम लोगोंमेंसे कोई यहाँ पानी तक न पी सकेगा।

ताई—रमेश, इनसे कह दो कि मुझे यह डर न दिखलावें। यहाँ अनाथों, भूखों और कगालोंकी कमी नहीं है। हमारी इतनी तैयारी व्यर्थ नहीं जायगी, बल्कि उलटे सार्थक ही होगी।

रमेश—(आकुल स्वरसे) लेकिन ये सब लोग तो खडमडल कर देना चाहते हैं। ताईजी, इन सब बातोंकी सारी जिम्मेदारी तुमपर आ पड़ेगी।

ताई—रमेश, यह तुम्हारी नासमझी है। हमारे घरके काम-काजकी जिम्मेदारी हमारे सिर नहीं पड़ेगी, तो क्या किसी दूसरेके सिर पड़ेगी? इस समय इन लोगोंसे जानेके लिए कह दो। अभी बहुतसे काम पड़े हैं। मेरे पास व्यर्थ नष्ट करनेके लिए समय नहीं है।

(ताई अन्दर चली जाती हैं। सदर दरवाजेसे गोविन्द, धर्मदास और परान हालदार धीरेसे बाहर निकल जाते हैं।)

रमेश—मैं समझता था कि मेरा कोई नहीं है। लेकिन ताईजी, जिसकी तुम हो, उसके सभी हैं।

तीसरा दृश्य

गाँवका रास्ता

[श्राद्धवाले घरसे न्यौता खाकर दीनू भट्टाचार्य लौट रहे हैं। उनके साथ पटल, न्याड़ा, बूढ़ी आदि लड़के लड़कियाँ हैं। सबोंके हाथमें एक एक पोटली है और दूसरे हाथमें पुरवोंमें रायता और खीर आदि।]

खेंदी—(डरकर) बाबूजी, भजुआ आ रहा है...

(सुनते ही सब लोग चौंक पड़ते हैं। रमेशका नौकर भज्जू आता है।)

दीनू—अरे यह तो भज्जू बाबू हैं! कहाँ जाना हो रहा है?

भज्जू—अरे भट्टाचार्ज महाराज, यह सब क्या लिये जा रहे हैं?

दीनू—कुछ नहीं भइया, यही जरा-सा जूठा मीठा है। महल्लेमें छोटी जातिके

गरीब और दुखिया लड़की लड़के हैं न। जाते ही सब लोग हाथ फैलाकर खड़े हो जायँगे। उन लोगोंको ही देनेके लिए...

भज्जू—अरे कमी किस चीजकी है! कितने गरीब-दुखिया वहाँ बैठकर पूरी मिठाई खा रहे हैं—

दीनू—अरे हाँ, खा क्यों नहीं रहे हैं भइया, सभी तो खा रहे हैं। राजाका भंडार ठहरा। यहाँ कमी किस बातकी है! लेकिन फिर भी सभी तो आ नहीं सकते। उन्हींके लिए जरा सा...

भज्जू—हाँ हाँ, ठीक है। भट्टाचार्जजी, यह बड़ा खराब गाँव है। कितना गोलमाल होता है! यह उठता है, तो वह बैठता है। यह भागता है तो वह खींचकर लाता है। हाः हा हाः।

दीनू—अरे भइया, सब ऐसे ही होता है। बड़े काम-काजोंमें ऐसा ही होता है। —बूड़ी, देख जरा पटलका हाथ बदल ले।—(भज्जूसे) अरे भइया, हमारा गाव तो फिर भी बहुत कुछ ठिकानेसे है।—अरे रास्ता देखकर चल न। ठोकर लगेगी तो दहीकी हँड़िया गिर जायगी।—अरे भइया, मैं जो हाल खेंदीके मामाके यहाँ देख आया हूँ, वह तुमसे क्या कहूँ। वहाँ ब्राह्मणों और कायस्थोंके सब मिलाकर बीस तो घर नहीं होंगे, लेकिन दस तड़ें हैं।—क्यों बे पटल, ऊपर आसमानकी तरफ मुँह करके चलता है?—तो भी भइया, एक बात मैं कह सकता हूँ। भिक्षाके लिए बहुत-सी जगहोंपर जाना पड़ता है। बहुतसे लोग मुझपर कृपा भी रखते हैं। मैंने खूब देखा है कि जो कुछ दया-माया है, वह सब तुम्हारे बाबू साहब जैसे लडकोंमें ही है। अगर नहीं है तो खाली बुड्ढे सालोंमें नहीं है। मौका पाते ही ये दूसरेके गलेपर पैर रखकर खडे हो जाते हैं और जीभ बाहर निकलवाकर ही छोडते हैं।

(इतना कहकर अपनी जीभ बाहर निकालकर दिखलाता है।)

भज्जू—हाः हाः हाः।

दीनू—और यह गोविन्द गांगुली! अगर इस सालेके पापकी बात मुँहसे कही जाय तो प्रायश्चित्त करना पड़े। जालसाजी करनेमें, झूठी गवाही देनेमें और झूठा मुकदमा गढ़नेमें इसका कोई सानी नहीं है। सभी डरते हैं। और फिर वेणी बाबू इसके मददगार हैं, इसलिए किसीको उससे कुछ कहनेका भी साहस नहीं होता। चाहे जिसकी जात मारता हुआ घूमता है।

भज्जू—भट्टाचार्जजी, सब जगह ऐसा ही होता है। हमारे गाँवमें भी बहुत गोलमाल है।...मगर हमारे बाबूजीको कोई नहीं पा सकता।

दीनू—हाँ भइया, हम भी कहते हैं कि कोई नहीं पा सकता।—अरे खेंदी, जरा पैर बढ़ाये चल। तू तो....

भज्जू—अरे हमारे बाबू क्या आदमी हैं? वह तो देवता हैं।

दीनू—हाँ भइया, रमेश देवता ही हैं।—अरे पटल, फिर मुँह बाये खड़ा है!—हाँ तो भज्जू बाबू, कहाँ जा रहे हो?

भज्जू—आचार्जजीके घर।

दीनू—अच्छा अच्छा, जाओ, जरा जल्दी जाओ। अब हम लोग भी चलते हैं।

(सबका प्रस्थान।)

चौथा दृश्य

[मधु पाल मोदीकी दूकान। बिक्री-बट्टा हो रहा है।]

पहला गाहक—एक पैसेका तेल देनेमें क्या सन्ध्या कर दोगे?

मधु—अरे भाई, देता हूँ।

दूसरा गाहक—अरे पाल भइया, एक पैसेकी हलदी देनेमें इतनी देरी?

मधु—अरे भाई, देता तो हूँ। अकेला आदमी...

तीसरा गाहक—दो पैसेकी मसूरकी दालके लिए मालूम होता है कि आज हमारे यहाँ रसोई न चढ़ने पावेगी।

मधु—अरे चाचा, रसोई क्यों नहीं होगी? लो न।

[रमेशका प्रवेश।]

मधु—(गरदन आगे बढ़ाकर और देखकर) अरे यह तो हमारे छोटे बाबू है। प्रणाम बाबूजी! (इतना कहकर और हाथमें एक मोढ़ा लेकर दूकानके नीचे उतर आता है।) हमारे सात पुरखोंके बड़े भाग्य जो दूकानपर आपके चरण पड़े। बैठिए।

रमेश—श्राद्धके हिसाबमें तुम्हारे दस रुपये बाकी थे। तुम भी लेने नहीं आये और मैं भी नहीं भेज सका। आज सोचा कि चलो खुद ही चलकर दे आऊँ। यह लो।

मधु—(हाथ बढ़ाकर और रुपये लेकर) बाबूजी, यह तो हमारे बाप-दादाने भी कभी नहीं सुना कि आदमी घर आकर रुपये दे जाय !

रमेश—(मोढ़ेपर बैठकर) क्यों मधु, दूकान कैसी चलती है ?

मधु—बाबूजी, दूकान कहाँसे चले ? दो आना, चार आना, एक रुपया, सवा रुपया ऐसे ही करते करते साठ सत्तर रुपये लोगोंके यहाँ बाकी पड़ गये हैं। लोग कह जाते हैं कि सन्ध्याको दे जायँगे और फिर छः छः महीने तक देनेका नाम नहीं लेते।—अरे ये तो बनर्जी महाराज हैं। प्रणाम। कहिए, कब आये ?

[बनर्जीके बाएँ हाथमें एक झारी है, पैरोंपर कीचड़के दाग हैं, कानपर जनेऊ चढ़ा है और दाहिने हाथमें अरुईके पत्तेमें लपेटी हुई चार छोटी छोटी चिंगड़ी मछलियाँ हैं।]

बनर्जी—कल रात ही तो आया हूँ। मधु, जरा तमाकू पिलाओ।

[इतना कहकर झारी रख देते हैं और हाथसे मछलियाँ भी।]

बनर्जी—इस सैरुबी धीवरिनकी अक्किल तो देखो मधु, चटसे कम्बख्तने मेरा हाथ पकड़ लिया ! भला बतलाओ तो सही कि कैसा जमाना आ गया है ! ये क्या एक पैसेकी चिंगड़ी हैं ? ब्राह्मणको ठगकर कै दिन खायगी हरामजादी ! उसका सत्यानाश हो जायगा !

मधु—अरे उसने आपका हाथ पकड़ लिया !

बनर्जी—उसके सिर्फ ढाई पैसे बाकी थे, लेकिन क्या इतनेके लिए उसे हाटमें सब लोगोंके सामने मेरा हाथ पकड़ लेना चाहिए ? यह किसने नहीं देखा ? मैंने मैदानसे निबटकर, झारी माँजकर और नदीमें हाथ-पैर धोकर सोचा कि जरा हाटसे भी होता चलूँ। हरामजादी एक दौरीमें मछलियाँ रखकर बैठी थी। मुझे देखकर आप ही बोली कि महाराज, आज अब कुछ नहीं है, जो थीं, सब बिक गईं। पर मेरी आँखमें वह कहीं धूल झोंक सकती है ? ज्यों ही मैंने उसकी दौरीमें हाथ डाला त्योंही झटसे उसने मेरा हाथ पकड़ लिया।—अरे तेरे पहलेके ढाई पैसे बाकी हैं और आजका एक पैसा हुआ। क्या ये साढ़े तीन पैसे लेकर मैं गाँव छोड़कर भाग जाऊँगा ? क्यों मधु, क्या कहते हो ?

मधु—भला ऐसा भी कहीं हो सकता है !

बनर्जी—तब फिर कहते क्यों नहीं ? गाँवमें क्या किसीपर किसीका कोई शासन रह गया है ? नहीं तो षष्ठी धीवरके धोबी और नाऊ बन्द करके, और

झोपड़ी उजाड़कर उसे दुरुस्त न कर दिया जाता !—(अचानक रमेशकी ओर देखकर) अरे मधु, ये बाबूजी कौन हैं ?

मधु—ये हमारे छोटे बाबूजी हैं । श्राद्धके हिसाबमें दस रुपये बाकी रह गये थे, वही देनेके लिए आये हैं !

बनर्जी—अच्छा, रमेश भइया हैं ! जीते रहो बेटा । यहाँ आकर सुना कि तुमने जैसा चाहिए, वैसा ही काज किया है । ऐसा खाना-पीना इस तरफ आज तक कभी हुआ ही नहीं । लेकिन दुःख है कि मैं अपनी आँखोंसे नहीं देख सका । कुछ हरामजादोंके फेरमें पड़कर नौकरी करने कलकत्ते चला गया था; सो वहाँ इतनी दुर्दशा हुई । अरे राम राम, वहाँ क्या कोई आदमी रह सकता है ?

मधु—(तम्बाकू भरकर और हुक्का बनर्जीके हाथमें देकर) फिर, कुछ नौकरी वौकरी मिल तो गई थी न ?

बनर्जी—क्यों, मिलती क्यों नहीं क्या मैंने कोदों देकर लिखना-पढ़ना सीखा था ? लेकिन नौकरी मिलनेसे ही क्या होता है ? जैसा धूआँ वैसी ही वहाँ कीचड़ । घरसे बाहर निकलो और अगर बिना किसी गाड़ीके नीचे दबे सही-सलामत लौटकर घर आ जाओ, तो समझो कि तुम्हारे बापने बड़े पुण्य किये थे । तुम कभी गये हो वहाँ ?

मधु—जी नहीं, एक बार मेदिनीपुर शहर देखा है ।

बनर्जी—अरे गँवैया भूत, कहाँ कलकत्ता और कहाँ मेदिनीपुर ! जरा अपने रमेश बाबूसे पूछ कि मैं सच कहता हूँ या झूठ । अरे मधु, अगर खानेको न मिलेगा तो लड़के-बच्चोंका हाथ पकड़कर भीख माँग लूँगा, ब्राह्मण टहरा, भीख माँगनेमें कोई लज्जा नहीं । लेकिन अब परदेश जानेका मेरे सामने कोई नाम न ले । कहूँगा तो तुम शायद विश्वास नहीं करोगे कि वहाँ सोआ, करेमू, चलता, और केलेके फूल तथा डंठल तक खरीदकर खाने पड़ते हैं ! तुम खा सकोगे ? बिना खाये मैं तो इधर महीने-भरमें ही रोगी चूहेकी तरह हो गया हूँ ।

[इतना कहकर बनर्जी मधुके हाथमें हुक्का दे देते हैं और उठकर मधुके तेलके बरतनमेंसे थोड़ा-सा तेल हथेलीमें लेकर कुछ नाक और कानोंमें डालते हैं और बाकी सिरपर डालकर रगड़ने लगते हैं ।]

बनर्जी—बहुत दिन चढ़ आया । अब जरा गोता लगाकर घर चलूँ । मधु, एक पैसेका नमक तो दे दो । पैसा सन्ध्याको दे जाऊँगा ।

मधु—फिर वही सन्ध्याको !

(मधु कुछ दुःखित होकर उठता है और दूकानमें जाकर कागजकी पुड़ियामें नमक देता है ।)

बनर्जी—(नमक हाथमें लेकर) अरे मधु, तुम सब लोगोंको भला हो क्या गया है ? गालपर थप्पड़ मारकर पैसा छीन लेना चाहते हो ! (इतना कहकर और अपने हाथसे ही एक पसर नमक उठाकर पुड़ियामें रख लेता है और रमेशकी ओर देखते हुए मुस्कराकर कहता है—)—यही तो रास्ता है; चलो न भइया, रास्तेमें बातचीत करते चलें ।

रमेश—अभी मुझे कुछ देर है ।

बनर्जी—अच्छा तो रहने दो ।

(झारी उठाकर चलना चाहता है ।)

मधु—क्यों बनर्जी महाराज, वह आटेका दाम पाँच आना क्या यों ही...

बनर्जी—क्यों रे मधु, क्या लज्जा शरम तुम लोगोंकी आँखोंके चमड़े तकको भी नहीं छू गई है ? उन हरामजादोंके फेरमें पड़कर कलकत्ते आने-जानेमें मेरे पाँच-छह रुपये मिट गये । क्या यही तुम्हारे लिए तगादा करनेका समय है ? किसीका सर्वनाश और किसीका पौष मास ! यही बात है न ? देखा भइया रमेश, जरा इन लोगोंका व्यवहार देखा ?

मधु—(लज्जित होकर) बहुत दिनोंका...

बनर्जी—अरे हुआ करें बहुत दिन ! अगर सब लोग मिलकर इसी तरह मेरे पीछे पड़ जाओगे, तब तो गाँवमें रहना ही मुश्किल हो जायगा ।

(बनर्जी कुछ नाराजसे होकर अपनी सब चीजें उठाकर चल देते हैं । इसके बाद तुरन्त ही वनमाली धीरे धीरे आकर प्रणाम करके रमेशके पैरोंके पास खड़े हो जाते हैं ।)

रमेश—आप कौन हैं ?

वन०—आपका सेवक वनमाली । इस गाँवके माइनर स्कूलका प्रधान अध्यापक हूँ ।

रमेश—(कुछ सकपकाकर और खड़े होकर) आप ही स्कूलके हैडमास्टर हैं ?

वन०—जी हाँ, मैं ही आपका सेवक हूँ । मैं दो बार आपके यहाँ प्रणाम करने गया, लेकिन आपसे भेंट नहीं हुई ।

रमेश—आपके स्कूलमें कितने लड़के पढ़ते हैं?

वन०—चयालीस लड़के। हर साल दो लड़के मिडिलमें पास होते हैं। एक वार नारायण बनर्जीके तीसरे लड़केने छात्रवृत्ति भी पाई थी।

रमेश—अच्छा!

वन०—जी हाँ। लेकिन इस बार अगर स्कूलका छप्पर ठीक न कराया गया तो बरसातका पानी स्कूलके बाहर न पड़ेगा।

रमेश—सारा ही आप लोगोंके सिरपर गिरेगा?

वन०—जी हाँ। लेकिन उसमें अभी देर है। इस समय तो हम लोगोमेंसे किसीको इधर तीन महीनेसे तनख्वाह नहीं मिली है। मास्टर लोग कहते हैं कि अपने घरका खाकर अब जंगलके मच्छर नहीं उड़ाये जायँगे।

रमेश—आपकी तनख्वाह कितनी है?

वन०—तनख्वाह तो छब्बीस रुपये है, लेकिन पाता हूँ तेरह रुपये पन्द्रह आने।

रमेश—तनख्वाह तो छब्बीस रुपये है, और मिलते हैं तेरह रुपये पन्द्रह आने! आखिर इसका मतलब?

वन०—गवर्नमेण्टका हुकम है कि नहीं। इसीलिए छब्बीस रुपयेकी रसीद लिखकर डिप्टी इन्सपेक्टरको दिखलानी पडती है। और नहीं तो सरकारी सहायता बन्द हो जाय।

रमेश—इससे लड़कोंके सामने आपके सम्मानकी हानि नहीं होती?

वन०—जी नहीं, यह तो देशाचार है। इसके सिवा लडके हमसे उसी तरह डरते हैं जिस तरह बाघसे। बेतोंसे उनकी पीठ लाल कर देते हैं न!

रमेश—हाँ, कर देनेकी बात ही है। और सब मास्टरोंकी तनख्वाह कितनी है?

वन०—तेईस रुपये।

रमेश—तेईस? एक आदमीकी या तीन आदमियोंकी?

वन०—तीन आदमियोंकी। नौ रुपये, आठ रुपये और छः रुपये। पर वेणी बाबू इतना भी नहीं देना चाहते। कहते हैं कि आठ रुपये सात रुपये हो जायँ तो अच्छा।

रमेश—ठीक है। मालूम होता है कि मालिक वही हैं।

वन०—जी हाँ, वही सेक्रेटरी हैं। लेकिन कभी अपने पाससे एक पैसा भी नहीं देते। हाँ, यदु मुकुर्जीकी कन्या रमा पूरी सती लक्ष्मी हैं। अगर उनकी दया न होती तो यह स्कूल कभीका बन्द हो गया होता।

रमेश—यह आप क्या कह रहे हैं? मैंने तो यह नहीं सुना।

वन०—जी हाँ छोटे बाबू, केवल उन्हींकी दयासे स्कूल चल रहा है और किसीकी दयासे नहीं। उनका एक भाई भी इसी स्कूलमें पढ़ता है। इस साल उन्होंने कहा था कि छप्पर डलवा देंगी, लेकिन, मैं यह नहीं कह सकता कि उन्होंने क्यों अब तक छप्पर नहीं डलवाया। शायद किसीने भाँजी मार दी है।

रमेश—क्या यह भी होता है? अच्छा, आज आप जायँ क्योंकि आपको देर हो रही है। कल मैं आपका स्कूल देखनेके लिए आऊँगा।

वन०—जो हुकम। आपकी दया है, तो फिर हम लोगोंको चिन्ता ही किस बातकी?

[इतना कहकर वनमाली फिर एक बार झुककर प्रणाम करते हैं और चले जाते हैं। दूसरे रास्तेसे गोपाल और भज्जूका प्रवेश।]

रमेश—क्यों गुमाश्ताजी, आप अचानक इस तरह घबराये हुए क्यों चले आ रहे हैं?

गोपाल—वेणी बाबूने तो बहुत अत्याचार करना शुरू कर दिया है छोटे बाबू, रोज रोज तो यह नहीं सहा जाता।

रमेश—क्यों, बात क्या है?

गोपाल—कपासडँगेमें बाईस बीघेका जो बन्द है, उसका अभी तक बँटवारा नहीं हुआ है। वह अभी तक मुकर्जीके साथ सीरमें जोता जाता है। एक हिस्सा उनका है, एक हिस्सा वेणी बाबूका है और एक हिस्सा हम लोगोंका है। उस दिन उन्होंने इतना बड़ा इमलीका पेड़ काटकर आपसमें दो हिस्सोंमें बाँट लिया और हम लोगोंको एक टुकड़ा तक नहीं दिया। जब आपसे मैंने कहा, तब आपने कह दिया कि जरा-सी लकड़ीके लिए झगड़ा नहीं किया जा सकता।

रमेश—ठीक ही है गुमाश्ताजी, क्या एक मामूली-सी चीजके लिए बड़े भाईके साथ झगड़ा किया जा सकता है?

गोपाल—बस, इसी भरोसे वेणी बाबू आज ज़बरदस्ती गढ़-तालाबकी मछलियाँ

पकड़ ले गये हैं। मैं समझता हूँ, इस समय मुकर्जीके यहाँ उनका हिस्सा बाँट हो रहा होगा।

रमेश—लेकिन यह आप ठीक तरहसे जानते हैं कि उसमें हम लोगोंका हिस्सा है ?

गोपाल—और नहीं तो क्या छोटे बाबू, मैंने क्या यों ही इस काममें सिरके बाल पकाये हैं ?

रमेश—लेकिन सब लोग तो कहते हैं कि रमा बहुत ही धर्मनिष्ठ लड़की है। उसीसे क्यों न एक बार पुछवा लिया ?

गोपाल—सुनता हूँ कि उन्होंने हँसकर कह दिया कि छोटे बाबूसे जाकर कह दो कि वह सारी सम्पत्ति हमें सौंप दें और अपना महीना बाँधकर जहाँसे आये हैं, वहीं चले जायँ। जमींदारीकी रक्षा करना डरपोक आदमियोंका काम नहीं है।

रमेश—तो मालूम होता है कि चोरी करनेको ही उन्होंने साहसका काम समझ रक्खा है। भज्जू, तुम्हारे साथ लाठी है ?

भज्जू—(लाठी उठाकर) हजूर।

रमेश—जाकर सारी मछलियाँ उनसे छीन लाओ। अकेले ला सकोगे ?

भज्जू—(सिर झुकाकर) हम तो सिर्फ हुकमके नौकर हैं हजूर।

(भज्जू वहाँसे जाना चाहता है।)

गोपाल—(अचानक बहुत ही भयभीत होकर) लेकिन छोटे बाबू, इसमें तो सचमुच फौजदारी हो जायगी !

रमेश—तो फिर और उपाय ही क्या है ?

गोपाल—छोटे बाबू, इस तरह एकदमसे कोई काम कर बैठना ठीक होगा ?

रमेश—तो फिर आप क्या करनेको कहते हैं ?

गोपाल—कहता हूँ,—मैं कहता हूँ कि पहले थानेमें रिपोर्ट कर दी जाय। और नहीं तो एक बार उनसे अच्छी तरह पूँछकर...

रमेश—तो फिर गुमाश्ताजी, वही कीजिए। हमारे जैसे डरपोक आदमीको इससे कुछ और अधिक करना उचित भी नहीं है। भज्जू, तुम उस घरकी माँजीको पहचानते हो न ? पहचानते हो। अच्छा जाकर उनसे पूछ आओ

कि गढ़-तालाबकी मछलियोंमें हमारा हिस्सा है या नहीं। अगर वह कहें, है, तो मछलियाँ लेते आना। अगर कहें कि नहीं है, तो चुपचाप चले आना। मुझे पूरा विश्वास है गुमाश्ताजी, कि मामूली दो-चार मछलियोंके लिए रमा झूठ नहीं बोलेगी।

(भज्जूका जल्दीसे प्रस्थान।)

पाँचवाँ दृश्य

[वेणी घोषालके अन्तःपुरमें विश्वेश्वरीका कमरा। रमा आती है और सामने दासीको देखती है।]

रमा—नन्दकी माँ, ताईजी कहाँ हैं?

दासी—अभी वह पूजाके कमरेसे बाहर नहीं निकली हैं। क्यों बहन, जाऊँ, उन्हें बुला लाऊँ?

रमा—उनकी पूजामें बाधा डालकर? नहीं नहीं, मैं बैठती हूँ। जब वे बाहर निकलें, तब उन्हें मेरे आनेकी खबर कर देना।

दासी—बहुत अच्छा बहन!

[दासी चली जाती है। थोड़ी देर बाद दबे पैरों यतीन्द्रका प्रवेश।]

यतीन्द्र—जीजी!

रमा—(चौंककर और मुँह फेरकर) अरे तू कहाँसे आ गया?

यतीन्द्र—मैं तो तुम्हारे पीछे पीछे ही आ रहा था, देख नहीं पाया?

[आगे बढ़कर रमासे लिपट जाता है।]

रमा—कैसा दुष्ट लड़का है रे तू? समय हो गया, स्कूल नहीं जायगा?

यतीन्द्र—आज तो हम लोगोंकी छुट्टी है जीजी!

रमा—छुट्टी किस बातकी? आज तो अभी बुधवार है।

यतीन्द्र—हुआ करे बुधवार। बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और रविः एकदमसे पाँच दिनकी छुट्टी है।

रमा—छुट्टी किस बातकी?

यतीन्द्र—हमारे स्कूलपर नया छप्पर जो डाला जा रहा है। उसके बाद चूनेका काम होगा। बहुत-सी किताबें आवेंगी। चार-पाँच कुरसियाँ और टेबुलें

आई हैं। एक अलमारी और एक बडी घड़ी आई है। किसी दिन तुम भी चलकर देख आओ न जीजी!

रमा—अरे कहता क्या है रे?

यतीन्द्र—मैं बिलकुल ठीक कहता हूँ जीजी! रमेश बाबू आये हैं न। वे ही यह सब करा रहे हैं। उन्होंने कहा है कि अभी और भी न जाने क्या क्या करा देंगे। वह रोज दो घंटे आकर हम लोगोंको पढ़ा भी जाते हैं।

रमा—क्यों यतीन्द्र, वे तुझे पहचानते हैं?

यतीन्द्र—हाँ।

रमा—तू उन्हें क्या कहकर पुकारता है?

यतीन्द्र—हम लोग उन्हें 'छोटे बाबू' कहते हैं।

रमा—(भाईको खींचकर और गलेसे लगाकर) छोटे बाबू कैसे रे! वे तो तेरे बड़े भइया हैं।

यतीन्द्र—धत्...

रमा—धत् क्या! तू जिस तरह वेणी बाबूको 'बड़े भइया' कहकर पुकारता है, उसी तरह इन्हें 'छोटे भइया' कहकर नहीं पुकार सकता?

यतीन्द्र—क्या वे मेरे बड़े भाई हैं? सच कहती हो जीजी?

रमा—हाँ हाँ, सच कहती हूँ। वे तेरे बड़े भाई हैं।

यतीन्द्र—तो मैं घर जाऊँ जीजी, और जाकर नरू, हारा, सन्ता सब लोगोंसे कह आऊँ?

(रमा गरदन हिलाकर मना करती है।)

यतीन्द्र—क्यों जीजी, इतने दिनोंतक वे कहाँ थे?

रमा—वे इतने दिनों तक पढ़नेके लिए परदेस गये हुए थे। यतीन्द्र, जब तू बड़ा हो जायगा तब तुझे भी इसी तरह परदेस जाकर रहना पड़ेगा। मुझे छोड़कर अकेला रह सकेगा?

यतीन्द्र—(दो तीन बार अनिश्चित भावसे सिर हिलाकर) क्यों जीजी, छोटे भइयाकी सब पढ़ाई खतम हो गई?

रमा—हाँ, उनकी सब पढ़ाई खतम हो चुकी है।

यतीन्द्र—तुमने कैसे जाना?

रमा—(थोड़ी देर तक चुप रहकर) जब तक कोई अपनी पढ़ाई खतम न

कर ले, तब तक वह दूसरोंके लड़कोंके लिए इतना रुपया दे सकता है ? इतनी-सी बात तू नहीं समझ पाता ?

यतीन्द्र—(सिर हिलाकर जतलाता है कि हाँ, समझता हूँ) अच्छा जीजी, छोटे भइया हमारे यहाँ क्यों नहीं आते ? बड़े भइया तो रोज आते हैं।

रमा—तू उन्हें बुलाकर नहीं ला सकता ?

यतीन्द्र—अभी जाऊँ जीजी ?

रमा—(भय-व्याकुल हो दोनों हाथोंसे गले लगाकर) तू भी कैसा पागल लड़का है रे ! खबरदार यतीन्द्र, कभी ऐसा काम मत करना, कभी न करना।

यतीन्द्र—जीजी, तुम्हारी आँखोंमें पानी क्यों भर आया ? जिस कामके लिए तुम मना कर देती हो, वह काम तो मैं कभी नहीं करता।

रमा—(आँखें पोंछकर) हाँ, जानती हूँ कि नहीं करता। तू मेरा राजा भइया है न, इसीलिए !

यतीन्द्र—अब घर चलो न जीजी !

रमा—तू जा। मैं थोड़ी देर बाद आऊँगी।

(यतीन्द्र चला जाता है।)

[विश्वेश्वरीका प्रवेश।]

विश्वे०—बेटी, यह सब तुम लोग क्या कर रहे हो ? वेणीके चोरीके काममें तुमने कैसे मदद की रमा ?

रमा—ताईजी, मैंने तो उनसे यह काम करनेके लिए नहीं कहा।

विश्वे०—रमा, तुमने स्पष्ट भले ही न कहा हो, तो भी तुम्हारा अपराध कुछ कम नहीं हुआ।

रमा—लेकिन ताईजी, मै क्या करूँ, उस समय और कोई उपाय ही नहीं था। जब भज्जू लाठी हाथमें लिये हुए घरके अन्दर जाकर खड़ा हो गया, तब मछलियोंका हिस्सा-बाँट हो चुका था। बड़े भइया अपना हिस्सा लेकर चले गये थे। मुहल्ले-टोलेके दस पाँच आदमी भी एक एक दो दो मछलियाँ लेकर अपने अपने घर जा रहे थे।

विश्वे०—लेकिन रमा, असलमें वह मछलियाँ वसूल करनेके लिए नहीं गया था। रमेश मास-मछली छूता तक नहीं, इसलिए उसे इन सब चीजोंकी जरूरत भी नहीं। उसने तो भज्जूको तुम्हारे पास सिर्फ यह जाननेके लिए भेजा था कि कपासडाँगाके गढ़-तालाबमें उसका भी हिस्सा है या नहीं। अब तुम्हीं बतलाओ

बेटी कि यह बात तुम्हारे मुँहसे कैसे निकल गई कि उसमें उसका कोई हिस्सा नहीं है ?

(रमा सिर झुकाकर चुप रहती है ।)

विश्वे०—तुम तो नहीं जानतीं कि तुम्हारे प्रति उसके मनमें कितनी श्रद्धा और कितना विश्वास है; लेकिन मैं अच्छी तरह जानती हूँ । उस दिन इमलीका पेड़ काटकर तुम दोनोंने आपसमें बँटवारा कर लिया । गोपाल गुमाँस्तेकी बातोंकी ओर भी रमेशने कोई ध्यान नहीं दिया और कहा कि अगर हमारा हिस्सा होगा, तो हमें मिल ही जायगा । रमा कभी मुझे नहीं ठगेगी । लेकिन बेटी, कल जो किया है, उससे... । खैर, एक बात तुमसे कहे देती हूँ । धन-सम्पत्तिका मूल्य चाहे कितना ही अधिक क्यों न हो, लेकिन फिर भी इस मनुष्यके प्राणोंका मूल्य उससे कहीं अधिक है । देखो रमा, तुम कभी किसीकी बातोंमें आकर या किसी तरहके लोभमें पड़कर उसे चारों ओरसे आघात करके नष्ट न कर देना । इसमें जो कुछ गँवा बैठोगी, वह फिर कभी न मिलेगा ।

रमेश—(नेपथ्यसे) ताईजी !

[रमेशके अन्दर आते ही रमा सिर झुकाकर तिरछी होकर बैठ जाती है ।]

विश्वे०—इस दोपहरके समय एकाएक कैसे चले आये बेटा ?

रमेश—बिना दोपहरको आये तुम्हारे पास बैठनेका समय जो नहीं मिलता ताई । तुम्हें बहुतसे काम रहते हैं । क्यों, हँसी क्यों ? अच्छा ताईजी, तुम्हें याद है, कि ठीक ऐसे ही दोपहरके समय लड़कपनमें एक दिन आँखोंमें जल भर कर मैं तुमसे बिदा हुआ था ? आज भी मैं उसी तरह बिदा होनेके लिए आया हूँ । लेकिन ताईजी, ऐसा मालूम होता है कि यह मेरी आखिरी बिदाई होगी ।

ताई—राम राम बेटा, यह तुम क्या कहते हो ? आओ, मेरे पास आकर बैठो ।

[रमेश उसके पास बैठकर कुछ हँसता है, लेकिन कोई उत्तर नहीं देता । विश्वेश्वरी बहुत ही स्नेहपूर्वक उसके सिर और पीठपर हाथ फेरने लगती है ।]

विश्वे०—क्यों बेटा, क्या यहाँ तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं रहती ?

रमेश—ताईजी, मेरा पछाँहमें पला हुआ दाल-रोटीका शरीर है । यह क्या इतनी जल्दी खराब हो सकता है ? नहीं । लेकिन फिर भी मैं यहाँ एक दिन भी नहीं ठहर सकता । यहाँ तो मानो मेरा दम ही घुटा जाता है ।

विश्वे०—तुम्हारा शरीर अस्वस्थ नहीं है, यह सुनकर मेरी जानमें जान

आई बेटा। लेकिन यह तो तुम्हारी जन्म-भूमि है। आखिर यहाँ तुम क्यों नहीं ठहर सकते ?

रमेश—यह मैं नहीं बतलाऊँगा। मैं खूब अच्छी तरह समझता हूँ कि तुम सब जानती हो।

विश्वे०—सब नहीं तो कुछ जरूर जानती हूँ। लेकिन रमेश, सिर्फ इसीलिए ही मैं तुम्हें कहीं जाने न दूँगी।

रमेश—लेकिन ताईजी, मुश्किल तो यह है कि यहाँ कोई भी मुझे नहीं चाहता।

विश्वे०—सिर्फ लोगोंके न चाहनेके कारण ही भागनेसे तो काम चलेगा नहीं। अभी जो तुम अपने दाल-रोटीवाले शरीरकी इतनी बड़ाई कर रहे थे, सो क्या खाली भागनेके कामका है ? हाँ यह तो बतलाओ, गोपाल गुमाश्ता कहता था कि किसी रास्तेका मरम्मतके लिए तुम चन्दा कर रहे थे। उसका क्या हुआ ?

रमेश—अच्छा, यही एक बात तुम्हें बतलाये देता हूँ। तुम जानती हो कि वह कौन-सा रास्ता है ? वही जो डाक-खानेके सामनेसे होकर सीधा स्टेशनतक गया है। कोई पाँच बरस पहले बहुत जोरोंका पानी बरसनेसे बिगड़ गया था और अब बीचमें एक बहुत बड़ा गड्ढा हो गया है। लोग पैर फिसलनेसे गिर-गिरकर अपने हाथ पैर तोड़ लेते हैं, लेकिन उसकी मरम्मत नहीं करते। सिर्फ बीसेक रुपयोंका खरच है, लेकिन इसके लिए लगातार आठ-दस दिनोंतक घूमनेपर मुझे आठ दस पैसे भी नहीं मिले। कल रातको मैं मधुकी दूकानके सामनेसे होकर आ रहा था। सुना कि कोई सब लोगोंको मना कर रहा है कि तुम लोग एक पैसा भी मत देना। जो चर्र-मर्र बढ़िया जूते पहनकर चलते हैं और दो पहियोंवाली गाड़ीपर घूमते हैं, उन्हींको तो इसकी गरज है। किसीके कुछ न देनेपर भी वे अपनी गरजसे आप बनवावेंगे। बस, खाली 'बाबू बाबू' कहकर उनकी पीठपर हाथ फेरते रहना चाहिए।

विश्वे०—(हँसकर) वे लोग ऐसा कहते हैं तो भइया, करा दो न मरम्मत। दादाजीके ढेर रुपये तो तुम्हें मिले हैं।

रमेश—(कुछ बिगड़कर) लेकिन मैं क्यों देने लगा ? अब तो मुझे इसी बातका बहुत अधिक दुःख हो रहा है कि मैंने बिना समझे-बूझे इतने रुपये स्कूलके लिए क्यों खरच कर दिये। इस गाँवके किसी भी आदमीके लिए कुछ भी नहीं करना चाहिए। ये लोग इतने नीच हैं कि अगर इन्हें कुछ दान दिया जाय

तो ये बेवकूफ समझते हैं और अगर इनका भला किया जाय तो समझते हैं कि अपनी गरजसे कर रहा है। इन्हें तो क्षमा करना भी अपराध है। समझते हैं कि इसने डरकर छोड़ दिया।

(विश्वेश्वरी हँसने लगती है।)

रमेश—तुम हँसती हो ताईजी ?

विश्वे०—बेटा, मैं हँसू न तो और क्या करूँ ?—तो अब तुम नाराज होकर इन लोगोंको छोड़कर चले जाना चाहते हो ? रमेश, अगर तुम यह जानते होते कि ये लोग कितने दुःखी, कितने दुर्बल और कितने अज्ञान हैं, तो इन लोगोंपर नाराज होनेमें तुम्हें आप ही लज्जा आती। (रमासे) क्यों बेटी, तुम तो तभीसे सिर झुकाये बैठी हो। क्यों रमेश, क्या भाई-बहनमें बोल-चाल भी नहीं है ?

रमा—(उसी प्रकार सिर झुकाये हुए) ताईजी, मैं तो विरोध नहीं रखना चाहती। रमेश भइया...

रमेश—(चौंककर) हैं, क्या रमा हैं ! अकेली ही आई हो या अपनी मौसीको भी साथ लाई हो ?

विश्वे०—रमेश, यह तुम क्या कहते हो ! तुम लोगोंकी अच्छी तरह जान-पहचान नहीं है, इसीलिए...

रमेश—बस ताईजी, माफ करो, इससे अधिक और जानने-पहचाननेका आशीर्वाद मत दो। अगर ये घर जाकर अपनी मौसीको यहाँ भेज दें तो वह तुम्हें और मुझे दोनोंको चबा जाय और तब घर जाय। बाप रे बाप ! भागता हूँ...

विश्वे०—रमेश, जाओ मत। पहले बात सुन लो।

रमेश—(रुककर) नहीं ताईजी, मैं सब सुन चुका हूँ। जो लोग मारे अहं-कारके तुम्हें भी ठुकराकर चलना चाहते हैं, उन लोगोंकी तरफसे तुम एक बात भी मत कहो। अगर तुम्हारा अपमान होगा, तो वह मुझसे नहीं सहा जायगा।

(जल्दीसे प्रस्थान।)

रमा—(विश्वेश्वरीकी ओर देखकर और रोकर) क्यों ताईजी, यह कलंक मुझपर क्यों लगाया जा रहा है कि मैं तुम्हारा अपमान करनेके लिए मौसीको भेज दूँगी ?

विश्वे०—(रमाको अपने पास खींचकर) बेटी, उसने तुम्हें गलत समझा है। लेकिन जो सत्य है, उसे वह एक न एक दिन अवश्य जान लेगा।

———

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[तारकेश्वरका रास्ता। सूर्य निकले अभी थोड़ी ही देर हुई है। रमा पासके किसी तालसे स्नान करके गीले कपड़े पहने हुए लौट रही है। अचानक रमेशसे उसका सामना हो जाता है। वह एक बार सिरका आँचल आगे खींचनेकी चेष्टा करती है, लेकिन गीला कपड़ा खींचा नहीं जाता। तब वह जल्दीमें हाथका भरा हुआ घड़ा जमीनपर रखकर गीली धोतीके नीचे दोनों हाथ छातीके ऊपर रखकर कुछ झुककर खड़ी हो जाती है।]

रमा—आप यहाँ कैसे आ गये ?

रमेश—(एक ओर हटकर) क्या आप मुझे पहचानती हैं ?

रमा—हाँ, पहचानती हूँ। आप तारकेश्वर कब आये ?

रमेश—बस अभी अभी गाड़ीसे उतरा हूँ। मेरे मामाके यहाँकी औरतें आनेको थीं, लेकिन वे कोई आई नहीं।

रमा—यहाँ कहाँ ठहरे हैं ?

रमेश—कहीं नहीं। पहले कभी यहाँ आया नहीं हूँ। आजका दिन किसी तरह कहीं न कहीं बिता देना होगा। रहनेकी कोई जगह ढूँढ़ लूँगा।

रमा—साथमें भज्जू है ?

रमेश—नहीं, मैं अकेला ही आया हूँ।

रमा—अच्छी बात है। (इतना कहकर और कुछ हँसकर रमा जब जरा मुँह उठाती है तब अचानक फिर दोनोंकी चार आँखें हो जाती हैं। वह मुँह नीचा करके मन ही मन कुछ सकुचित होकर कहती है—) अच्छा तो आप मेरे ही साथ आइए।

[इतना कहकर वह जमीनपरसे घड़ा उठा लेती है और अग्रसर होना चाहती है।]

रमेश—मैं चल तो सकता हूँ, क्योंकि अगर चलनेमें दोष होता तो आप कभी न बुलातीं। यह बात भी नहीं है कि मैं आपको पहचानता न होऊँ, लेकिन

किसी भी तरह याद नहीं कर पाता। यही खयाल होता है कि कभी स्वप्नमें आपको देखा है। आप अपना परिचय तो दें।

रमा—मेरे साथ आइए। मैं रास्ता चलते चलते अपना परिचय दूँगी। कुछ यह भी याद है कि स्वप्न कब देखा था?

रमेश—नहीं। क्या आपके साथ कोई अपना आदमी नहीं है?

रमा—नहीं, एक दासी है, मगर वह डेरेपर काम कर रही है। और नौकर बाजार गया है। और फिर मैं तो प्रायः ही यहाँ आया करती हूँ। यहाँकी राह-गली सब पहचानती हूँ।

रमेश—लेकिन आप मुझे अपने साथ क्यों ले चल रही हैं?

रमा—न ले चलूँ तो आपको खाने-पीनेका बहुत कष्ट होगा।

रमेश—हुआ करे। इससे आपको क्या?

रमा—पुरुषोंको और सब बातें तो समझाई जा सकती हैं, सिर्फ यही बात नहीं समझाई जा सकती। मैं रमा हूँ।

रमेश—रमा?

रमा—हाँ। जिसके साथ परिचय होना भी आप घृणाकी बात समझते हैं, वही।

रमेश—लेकिन मुझे कहाँ ले जा रही हो?

रमा—अपने डेरेपर। वहाँ मौसी नहीं है। आप डरिए नहीं, चलिए।

[दोनोंका प्रस्थान। इसके बाद तुरन्त ही नीचे लिखे व्यक्तियोंका प्रवेश—एक हज्जाम आता है और उसके पीछे जल्दी जल्दी एक और आदमी आता है जिसकी दाढ़ी और मोंछ बहुत बढ़ी हुई और सिरपर बाल भी बड़े बड़े हैं। थोड़ी-सी दाढ़ी छुरेसे बनी हुई है। यह आदमी मन्नत पूरी करनेके लिए ठाकुरजीके यहाँ अपने सिरके बाल और दाढ़ी देने आया है।]

यात्री—(कुछ घबराहटमें) हज्जाम, ओ हज्जाम! तुम हज्जाम हो न? लो भइया, जरा मेरी दाढ़ी तो बना दो जिससे जल्दी जाकर गोता लगाकर पूजा कर आऊँ। यह बाबाका स्थान है, नहीं तो दो पैसेका भी काम नहीं है। लो यह चवन्नी लो और जल्दीसे हजामत बना दो। साढ़े बारहकी गाड़ीसे मुझे जाना है। घरमें लड़केको फिर दो दिनसे बुखार आने लगा है। बनाओ, जल्दी बनाओ। यहीं बैठ जाऊँ?

हज्जाम—(हाथमें चवन्नी लेकर, खूब अच्छी तरह देखकर, कमरमें खोंस-कर और दो बार उस आदमीकी तरफ सिरसे पैरतक देखकर) अरे तुम्हारी दाढ़ी तो जूठी हो गई है!

यात्री—जूठी कैसे? देखते तो हो, बाबाके लिए दाढ़ी और सिरके बाल बढ़ाये हैं। ये क्या हमारे हैं? ये जूठे कैसे हो गये?

हज्जाम—(हाथसे दिखलाकर) यह देखो, दाढ़ी बनाई हुई है। यह तो जूठी हो गई है।

यात्री—जूठी हो गई? एक साले हज्जामने चवन्नी हाथमें ले ली और जरा सा छुरा फेरकर कहा कि मालिककी चवन्नी और लाओ। मैंने पूछा कि मालिक कौन है? मैं तो अभी अभी गद्दीमें सवा रुपये जमा करके हुकम लिये आ रहा हूँ। तब वह बोला कि अच्छा, तो फिर और कहीं चले जाओ। इस तरह वह चवन्नी तो चली ही गई। मैं बिगड़कर चला आया। लो भइया, जल्दीसे बना दो। तुम्हारे माँ-बापका भला होगा।

हज्जाम—अभी आठ आने पैसे और निकालो। चार आने उसके और चार आने मालिकके।

यात्री—चार आने उसके और चार आने मालिकके? तुम लोग क्या आदमीको पागल कर दोगे? लाओ मेरी चवन्नी लौटा दो। मैं जाकर उसीसे बनवा लूँगा।

हज्जाम—जाते हो तो जाओ न। मैंने क्या तुम्हें पकड़ रक्खा है?

यात्री—(बिगड़कर) मैं कहता हूँ मेरी चवन्नी फेर दो।

हज्जाम—कैसी चवन्नी? इतनी देर तक दर-दस्तूर क्या यों ही हो गया?

यात्री—फिर वही तू-तुकार करता है!

हज्जाम—आया है बड़ा भारी पंडित कहींका! समझ रख, यह तारकेश्वरका स्थान है। आँखें दिखलायगा तो गरदनियाँ खायगा। देखूँ तो सही कि कौन तेरी दाढ़ी बनाता है!

[लड़केका हाथ पकड़े हुए एक प्रौढ़ स्त्री आती है। उसका आँचल पकड़े हुए मन्दिरके दो कर्मचारी भी जल्दी जल्दी आते हैं।]

पहला कर्म०—हैं, बाबाको ठगना! अरी अभागिन, तुझे और कोई ठगनेको नहीं मिला? खाली सवा रुपया मनौतीका?

प्रौढा—(कातर स्वरसे) नहीं भइया, मैं किसीको ठगती नहीं हूँ। मैंने सवा रुपयेकी ही मन्नत मानी थी सो सवा रुपया दे दिया।

पहला कर्म०—भला बतला तो कि कब मन्नत मानी थी ?

प्रौढा—तीन बरस हुए, उसी बाढ़के समय। मैं सच कहती हूँ भइया...

दूसरा कर्म०—सच कहती है ? झूठी कहींकी ! इधर तीन बरसमें घरमें और कोई बीमार ऊमार नहीं पड़ा ? फिर कभी मन्नत माननेकी जरूरत नहीं पड़ी ? ऐसा कभी नहीं हो सकता। रख तो अपनी छातीपर हाथ। अच्छी तरह याद कर। बाल-बच्चेवाली है। यह कोई और देवता नहीं हैं स्वय बाबा तारकनाथ हैं !

प्रौढा—(बहुत ही डरकर) भइया, शाप वाप मत देना। ले यह और एक रुपया...

पहला कर्म०—(हाथ बढ़ाकर और रुपया लेकर) बस एक रुपया ? कमसे कम और भी पाँच रुपयेकी मन्नत तूने मानी थी। अच्छी तरह याद कर। बाबाकी दयासे हम लोग सब बातें जान लेते हैं। हमें कोई ठग नहीं सकता।

दूसरा कर्म०—दे दे न पाँच रुपये ! बाल-बच्चेवाली ठहरी; क्यों बाबाके कोपमें पड़ती है ? तेरे बच्चेका कल्याण हो। दे, जल्दी दे डाल।

प्रौढा—(कुछ रोनी-सी होकर) नहीं भइया, अब मेरे पास रुपये नहीं हैं। और रुपये कहाँसे लाऊँ ?

पहला कर्म०—अरे यह गलेमें सोनेका जन्तर जो है। इसे सराफके यहाँ रखनेसे क्या पाँच रुपये भी नहीं मिलेंगे ? कहे तो आदमी साथ कर दें। वह दूकान दिखला देगा। फिर किसी दिन आकर छुड़ाकर ले जाइयो।

[एक स्त्रीको घेरे हुए पाँच-सात भिखारिनोंका प्रवेश।]

पहली भिखा०—दे माँ, तेरे बेटे-बेटियोंका कल्याण हो।

दूसरी भिखा०—दे माँ, तेरी लड़की और जँवाईका कल्याण हो।

तीसरी भिखा०—दे माँ, तेरे बाप-माँका...

चौथी भिखा०—दे माँ, तेरे स्वामी और पुत्रका...

[सब मिलकर धक्कमधक्का और खींचातानी करने लगती हैं।]

दाढ़ीवाला यात्री—मैं दाढ़ी और बाल नहीं देना चाहता और मनौती भी नहीं उतारना चाहता।

मन्नतवाली प्रौढा—अरे भइया, यह तो मेरे इष्टदेवका जन्तर है। इसे मैं कैसे बन्धक रक्खूँ ?

भिखारियोंसे घिरी हुई स्त्री—अरे मैं तो लुट गई। किसीने मेरी गाँठ काटके रुपये ही ले लिये!

भिखारिनियाँ—तेरे स्वामी और पुत्रका कल्याण हो, दे दे माँ एक पैसा। दे, एक अधेला दे।

पहला कर्म०—अरी माई, तू बाल-बच्चेवाली है और यह बाबाका स्थान है।

हज्जाम—दाढ़ी बनवाओगे ?

यात्री—मैं दाढ़ी बनवाऊँगा ? रहने दो, यह तारकनाथके सिर रहे। मैं घर जाता हूँ। (प्रस्थान)

भिखारिनोंसे घिरी हुई स्त्री—अरे अब मै घर कैसे जाऊँगी! किसीने मेरी गाँठ ही काट ली है!

भिखारिनें—दे माँ, एक पैसा। दे माँ, एक अधेला।

(कहते कहते सब उसे ठेलते ठेलते ले जाते हैं।)

मन्नतवाली प्रौढा—दोहाई बाबा तारकनाथकी, मेरे इष्ट देवताका जन्तर मत छीनो।

(लड़केका हाथ पकड़े हुए जल्दीसे प्रस्थान।)

पहला कर्म०—एक रुपयेसे ज्यादा वसूल नहीं हो सका।

दूसरा कर्म०—अरे उस अभागिनीके पास और कुछ था ही नहीं। (प्रस्थान)

हज्जाम—चलो, चार ही आने सही। कहीं सिर पटकनेपर भी तो चार आने नहीं मिलते। (प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

[तारकेश्वरमें रमाका मकान। एक मामूली सा बिछाना बिछा है। उसपर रमेश बैठा है। रमा घबराई हुई आती है।]

रमा—आप भी खूब हैं। मैं जरा उधर रसोईघरमें एक और तरकारी लानेके लिए गई कि आप उठकर हाथ-मुँह धोकर मजेमें भले आदमियोंकी तरह बिछौनेपर आ बैठे! बतलाइए, आप उठ क्यों बैठे ?

रमेश—डरसे।

रमा—डरसे ? किसके डरसे ? मेरे ?

[इतना कहकर रमा पास ही बैठ जाती है।]

रमेश—तुम्हारा भय तो था ही, पर साथ ही एक डर और भी था। आज कुछ बुखार-सा मालूम हो रहा है।

रमा—बुखार-सा मालूम हो रहा है ? आपने यह पहले ही क्यों नहीं कहा ? आप स्नान करके खानेके लिए क्या समझकर बैठ गये थे ?

रमेश—बिलकुल मामूली बात समझकर। जो इतनी तैयारी करके और इतने यत्नसे खिलावे, उसे यह कहकर निराश करना कहाँ तक मुनासिब हो सकता है कि मै नहीं खाऊँगा ? सोचा कि बुखार आता है तो आने दो। दवा खानेसे अच्छा हो जायगा। तुम्हारी बनाई रसोई न खाकर अगर यों ही रह जाता, तो फिर उसकी पूर्ति इस जीवनमें न हो सकती।

रमा—बस बस, रहने दीजिए। इस परदेसमें अगर सचमुच बुखार आ जाय तो भला आप ही बतलाइए कि कितना बुरा हो ?

रमेश—बुरा तो है ही, लेकिन जिस रानीको इतना-सा देख पाया हूँ, उसके हाथका भोजन न करना भी क्या कम बुरा होता ?

रमा—इतने पर ही यह कहते हैं ! इस परदेसमें तो मैं कोई तैयारी कर ही नहीं सकी।

रमेश—तैयारीकी बात सोचता ही कौन है ? सोचता हूँ केवल आदर और यत्नकी बात, भला यह मै कहाँ पाता ?

रमा—(लज्जित होकर) क्या आपके यहाँ यत्न करनेवालोंकी कोई कमी है ?

रमेश—भला तुम्हीं बतलाओ कि इतना यत्न कहाँ पाता ! छुटपनमें ही माँ मर गई। इसके बाद ताईजीके पास कुछ दिन ही रहा और तब अपने मामाके घर बहुत दूर चला गया। मामी तो मर ही चुकी थीं, इसलिए सारा घर होटलकी तरह था। वहाँसे पढ़नेके लिए इलाहाबाद गया। वहाँ भी होटल ही नसीब हुआ। इसके बाद गया इंजीनियरिंग कालेजमें। वहाँ बहुत दिनों तक रहना पड़ा; लेकिन लड़कपनसे होटलमे रहनेका जो दुःख भोगता आ रहा था; उसका फिर भी अन्त न हुआ। अगर खाना हो तो खा लो। न तो बाधा देनेवाला कोई शत्रु ही था और न आगे बढ़ा देनेवाला कोई मित्र।

(रमा चुप रहती है।)

रमेश—शरीर ठीक नहीं है, इसलिए जी भरकर खा न सका। तो भी ऐसा मालूम होता है कि मानों मेरे जीवनका यह पहला सुप्रभात है। इस जीवनकी सारी धारा मानों एक ही बारमें एकदम बदल गई।

रमा—(सिर नीचा किये हुए) आप सब बातोंको इतना बढ़ा बढ़ाकर क्यों कह रहे हैं ?

रमेश—अगर बढ़ानेकी शक्ति होती तो जरूर बढ़ाता। लेकिन वह नहीं है।

रमा—चलो, मेरे बड़े भाग्य हैं कि वह नहीं है, अन्यथा अधिक शक्ति होती तो शायद मुझे यहाँसे भाग जाना पड़ता। और फिर यह भी मेरा बड़ा भाग्य है कि घर लौटकर आप मेरी निन्दा नहीं करेंगे। चारों तरफ लोगोंसे यह तो नहीं कहते फिरेंगे कि रमाने बुलाकर पेट-भर खानेको भी न दिया।

रमेश—नहीं, रानी, निन्दा नहीं करूँगा और प्रशंसा भी नहीं करता फिरूँगा। मेरा आजका दिन निन्दा और प्रशंसा दोनोंके बाहर है। वास्तवम खाने-पीनेमें पेट भरनेके सिवा और भी कुछ है, आजसे पहले यह मानों मैं जानता ही न था।

रमा—आज ही पहले-पहल मालूम हुआ है ?

रमेश—हाँ, आज ही मालूम हुआ है।

रमा—अभी इससे भी अधिक जाननेको बाकी है। लेकिन उस दिन आप मुझे खबर भेज दीजिएगा।

रमेश—इसका मतलब ?

रमा—सब बातोंका मतलब जानना ही होगा, इसका भी भला क्या मतलब है रमेश भइया ? अच्छा, सच तो कहिए कि आप मुझे बिल्कुल ही नहीं पहचान सके थे ?

रमेश—भला तुम्हीं बतलाओ कि कैसे पहचानता ? वही लड़कपनमें देखा था। उसके बाद लौटकर आनेपर तो मैं तुम्हारा मुँह देख ही नहीं पाया। जब जब देखनेकी चेष्टा की तब तब या तो तुमने मुँह फेर लिया और या फिर दूसरी तरफ देखने लगीं। तभी तो आज हठात् जान पड़ा कि शायद यह मुख मैंने कभी स्वप्नमें देखा है। ऐसा स्वप्न तो...

रमा—अच्छा आप रातको क्या खाते हैं ?

रमेश—जो कुछ मिल जाता है, वही।

रमा—और यह तो बतलाइए कि आप इतने ला-परवाह ऊल-जलूल क्यों हैं? सुनती हूँ कि इस बातका कोई ठिकाना नहीं रहता कि कब कौन-सी चीज कहाँ रहती है और कहाँ जाती है। मानो किसी चीजपर कोई माया-ममता है ही नहीं। मानों सभी कुछ शून्यमें डूबता-उतराता रहता है।

रमेश—मेरी इतनी निन्दा किससे सुनी?

रमा—यह जानकर आप क्या करेंगे? क्या घर लौटकर उसके साथ झगड़ा करेंगे?

रमेश—क्या मैं लोगोंके साथ खाली झगड़ा ही करता फिरता हूँ?

रमा—यही तो करते हैं। जबसे आये हैं, तबसे मेरे साथ तो बराबर झगड़ा ही कर रहे हैं। क्या मौसी ही घरकी मालिक है? या मैंने उन्हें सिखला दिया है कि जिससे उनक मना कर देनेपर आपने मेरा मुँह तक देखना बन्द कर दिया? तालकी मछलियाँ क्या मैंने चुराई थीं जो मेरे पास आपने उसकी कैफियत माँगनेके लिए आदमी भेज दिया?

रमेश—कैफियत तो नहीं माँगी थी, सिर्फ जवाब चाहा था। लेकिन उस जवाबकी तो कोई अमर्यादा नहीं हुई, रानी।

रमा—नहीं हुई। लेकिन अमर्यादा नहीं हुई, इसीमें तो उसकी सारी अमर्यादाका भार मेरे सिर आ पड़ा है। क्या इसका भार मैं अनुभव नहीं करती या इस दंडको नहीं समझती? गाँव-भरमें अगर आपके खिलाफ कोई आदमी कुछ करेगा, तो क्या उसके लिए जवाबदेह मैं ही होऊँगी? क्या आपकी सारी नाराजगी आकर मेरे ही सिर पड़ेगी? मालूम होता है कि आप परदेससे यही न्याय सीखकर आये हैं।

[दासीका प्रवेश]

दासी—क्यों बहन, नटवर सब सामान बाँधे? नहीं तो छः बजेकी गाड़ी नहीं मिलेगी।

रमा—कुमुदा, इसके लिए आखिर इतनी जल्दी क्यों है?

दासी—बादल घिर आये हैं। मालूम होता है रातको बहुत पानी बरसेगा।

रमा—बरसा करे। तुम लोग मैदानमें थोड़े ही बैठी हो।

दासी—नहीं, उससे कह देती हूँ।

(प्रस्थान।)

रमेश—शायद सन्ध्याकी गाड़ीसे तुम लोगोंका जानेका विचार है ?

रमा—हाँ, और आपका ?

रमेश—मेरा ? मुझे तो जैसे-तैसे कलका दिन यहाँ बिताना ही पड़ेगा।

रमा—एक तो आपका शरीर अच्छा नहीं है, तिसपर बरसातके दिन हैं। आखिर आप रहेंगे कहाँ ?

रमेश—कहीं भी रह जाऊँगा। इतने लोग जो यहाँ पूजाके लिए आते हैं; आखिर वे भी तो कहीं ठहरते हैं ?

रमा—उन लोगोंके लिए तो जगह है। आप तो पूजा करने आये नहीं हैं, तब आपको कोई क्यों ठहरने देगा ?

रमेश—(हँसकर) क्या उनके चेहरेपर नाम लिखा रहता है ?

रमा—(हँसकर) हाँ, लिखा रहता है। भक्त लोग बाबा तारकनाथकी कृपासे उसे पढ़ सकते हैं और अ-भक्तोंको दूर कर देते हैं। आप बिछौना-उछौना भी तो अपने साथ नहीं लाये हैं ?

रमेश—नहीं। बिछौना उन लोगोंने लानेके लिए कहा था।

रमा—बहुत बढ़िया इन्तजाम है! शरीर अच्छा नहीं है, आकाशमें बादल छाये हुए हैं, साथ में नौकर-चाकर नहीं है, न ओढ़ना है न बिछौना है, न खाने-पीनेका कोई बन्दोबस्त है। फिर भी किसी बातकी चिन्ताका नाम तक नहीं है! कौन, कब, कहाँसे आवेगा, उसीपर निर्भर हैं। बिलकुल परमहंसोंवाली अवस्था है। आखिर आपकी यह हालत हुई कैसे ?

रमेश—जिसका कहीं कोई न हो, उसकी अपने आप ही हो जाती है।

रमा—यही तो देख रही हूँ। न हो तो आज इसी मकानमें रह जाइए।

रमेश—लेकिन जिनका मकान है...

रमेश—उन्हें कोई उजर न होगा। वे ऐसे नाचीजोंपर बहुत दया करते हैं और ठहरने भी देते हैं।

रमेश—लेकिन रमा, तुम्हें यह बिछौना रख जाना होगा।

रमा—हाँ, रख जाऊँगी। लेकिन देखिए, लौटा दीजिएगा, कहीं खो मत दीजिएगा।

रमेश—बिछौना कैसे खोऊँगा ? तुम मुझे न जाने क्या समझती हो! किसीने मेरे बारेमें तुम्हारा खयाल बिलकुल बिगाड़ दिया है।

रमा—(हँसकर) और कौन खयाल बिगाड़ेगा ? शायद मौसीने ही बिगाड़ दिया है। लेकिन वे यहाँ नहीं हैं, आप निर्भय होकर विश्राम कीजिएगा। तब तक मैं कुछ और काम-काज निबटा लूँ।

[जानेके लिए उठकर खड़ी होती है।]

रमेश—जिनका मकान है उनके साथ अगर परिचय न होगा तो—

रमा—उनके साथ तो आपका बहुत छोटी अवस्थासे परिचय है। चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं है। लड़कपनमें जिसे रानी कहकर पुकारा करते थे, उसीका यह मकान है।

रमेश—यह तुम्हारा मकान है ? यहाँ मकान किस लिए ?

रमा—कहा तो कि यह जगह मुझे बहुत अच्छी लगती है, इसीलिए मै प्रायः यहाँ आया करती हूँ।

रमेश—ठाकुरजीपर तुम्हारी बहुत भक्ति है ?

रमा—इसे भक्ति नहीं कहते। लेकिन जब तक जीती हूँ, तब तक कुछ चेष्टा तो करनी ही होगी।

[दासीका प्रवेश]

दासी—बहन, पानी बरसना शुरू हो गया है। आज चलनेमें कष्ट होगा।

रमा—तो आज नहीं जायँ। नटवरसे कह दो कि कल चलेंगे।

दासी—तब तो जान बची। लेकिन बात तो आज ही जानेकी थी। घरपर वे लोग फिकर करेंगे।

रमा—कुमुदा, बीच बीचमें थोड़ी चिन्ता करना अच्छा होता है। तू चल, मैं आती हूँ।

(दासीका प्रस्थान।)

रमेश—केवल मेरे ही कारण आज तुम्हारा जाना न हो सका।

रमा—आपके कारण नहीं, आपकी बीमारीके कारण। मुँह देखनेसे ही अच्छी तरह मालूम हो रहा है कि शायद बुखार आवेगा। इस अवस्थामें छोड़कर मैं जाऊँ भी कैसे ?

रमेश—मैं तो तुम्हारा कोई नहीं हूँ रमा, बल्कि रास्तेका काँटा हूँ। फिर भी एक गाँवके आदमीकी हैसियतसे आज जो आदर-यत्न तुम्हारे निकट पाया है, वह मुँहसे कहनेका नहीं है।

रमा—तो फिर मत ही कहिए। और दो दिन बाद यदि आप इसे भूल भी जायँगे तो मैं इसकी शिकायत नहीं करूँगी।

[रमा फिर चलनेको तैयार होती है।]

रमेश—आशीर्वाद देता हूँ रमा, तुम सुखी रहो, दीर्घजीवी हो।

रमा—(सहसा लौटकर और खड़ी होकर) रमेश भइया, अब मैं सचमुच तुमसे नाराज हो जाऊँगी। मैं हिन्दू विधवा हूँ। मुझे दीर्घजीवी होनेके लिए कहना मानो मुझे शाप देना है। हम लोगोंका कोई भी शुभाकांक्षी कभी इस तरहका आशीर्वाद नहीं देता। अब मैं जाती हूँ।

(जल्दीसे प्रस्थान।)

तीसरा दृश्य

[गाँवका रास्ता। समय प्रायः तीसरा पहर। लगातार तीन दिनतक पानी बरसते रहनेके कारण ताल-तलैया और नाले आदि जलसे बिलकुल भरे हुए हैं। रास्तेमें बहुत अधिक कीचड़ है। अभी थोड़ी ही देर पहले वर्षा रुकी है। हाथमें छड़ी और छाता लिये हुए वेणी और गोविन्दका प्रवेश। दुर्गम रास्तेके चिह्न उनके सारे शरीरपर मौजूद हैं।]

गोविन्द—(आड़मेंसे ही जरा जोरसे) मैं कहता हूँ कि आखिर इतना मुलाहजा किस बातका! बड़े रिश्तेदार बनकर आये हैं कहनेके लिए कि बाँध काट दो और पानी निकाल दो, नहीं तो खेत डूब जायँगे। डूबते हों तो डूब जायँ। बड़े बाबू, समझमें ही नहीं आता कि इन नीच जातके लोगोंका यह हौसला देखकर मैं हँसूँ या रोऊँ।

वेणी—हाँ देखो तो चाचा! इन किसान सालोंके सौ बीघेके खेत डूब जायँगे, इसलिए कहते हैं पानी निकाल दो! सामनेके तालका सालाना दो सौ रुपया जल कर देना पड़ता है। पानी निकाल देनेपर क्या फिर उसमें एक भी मछली रह जायगी?

गोवि०—मछली भला रह सकती है?—तुम साले नीच जातके लोग हो? कभी एक साथ दो रुपयोंका भी तो मुँह नहीं देखा होगा। जानते हो कि दो दो सौ रुपयोंका एक साथ नुकसान किसे कहते हैं? आदमी तो सब तैनात कर रक्खे हैं

न ? लुक-छिपकर ये साले कहींसे कुछ काट कूट तो नहीं देंगे ? बड़े बाबू, कुछ कहा नहीं जा सकता । जानपर आ बननेपर ये साले सब कुछ कर सकते हैं ।

वेणी—दरबान और गोपालको पहरा देनेके लिए भेज दिया है । उधर रमाके पीरपुरमें जो अकबर लठैत रहता है, उसे और उसके दोनों लड़कोंके पास भी खबर भेज दी है । वे लोग सौ आदमियोंसे मोरचा ले सकते हैं ।

गोवि०—भइया, तुमने यह ठीक किया । मैं तो चिलमपर तमाकू रखकर फूँक ही रहा था कि तुम्हारा नौकर जा पहुँचा । मैंने पूछा कि इस तरह पानीमें भीगते हुए कैसे आया हरी ? उसने कहा कि बड़े बाबू आपको बुलाते हैं । भइया, मैं झूठ नहीं कहूँगा, हाथका हुक्का हाथमें ही रह गया, एक कश तक खींचनेका समय नहीं मिला । तुरन्त छाता और छड़ी हाथमें लेकर निकल पड़ा । तुम्हारी चाचीने कहा कि इस आँधी-पानीमे कहाँ जाते हो ? मैंने कहा—चुप भी रहो । लगीं फिर पीछेसे बुलाने ।—देखती नहीं हो कि बडे बाबूने बुलवा भेजा है ? फिर इसमें आँधी कैसी और पानी कैसा ?

वेणी—चाचा, तुम तो जानते ही हो कि मैं बिना तुमसे पूछे एक पैर भी आगे नहीं रखता । जब मेरे पास रोने-धोनेसे कुछ नहीं हुआ तब सब साले गये छोटे बाबूके यहाँ दरबारदारी करने । वह तो है बिलकुल बैल गँवार, उसका क्या ! कहीं कह न बैठे कि हमारा नुकसान होता है तो होने दो, तुम लोग काट दो बाँध ।

गोवि०—कह सकता है । बड़े बाबू, वह हरामजादा सब कुछ कह सकता है । (कुछ धीमे स्वरसे) मैं कहता हूँ कि रमाके पास तो खबर भेज दी है न ? उस छोकरीका भी मिजाज सदा ठीक नहीं रहता । गरीब दुखियोंका रोना-धोना देख-कर कहीं वह भी सम्मति न दे बैठे !

वेणी—नहीं चाचा, उसका डर नहीं है । उसे मैंने सबेरे ही समझा-बुझाकर दबा दिया है । कल रातसे ही कुछ कुछ काना-फूसी सुन रहा था न !—देखो, फिर कई साले इसी तरफ आ रहे हैं ।

[कई कृषकोंका प्रवेश । वे लोग सिरसे पैर तक पानी और कीचड़में लथपथ हैं ।]

कृषकगण—(एक स्वरसे) दोहाई बड़े बाबूकी ! गरीबोंको बचाइए । अगर यह फसल डूब गई तो हमारे बाल-बच्चे भूखों मर जायँगे ।

गोवि०—क्यों जी सनातन, तुम लोग तो छोटे बाबूके पास दौड़े गये थे ! अब बचावें न वे ?

सनातन—गांगुली महाराज, जो गये हैं वे गये हैं । हम लोग तो इन्हीं चरणोंको जानते हैं और इन्हें ही पकड़े रहेंगे ।

[वेणी बाबूके पैरों पड़कर रोने लगता है ।]

दूसरा कृषक—(वेणी बाबूके पैरों पड़कर) हम लोगोंको बचाना चाहें तो बचावें और मारना चाहें तो मार डालें । हम आपके चरण नहीं छोड़ेंगे ।

वेणी—(जोरसे अपने पैर छुड़ाकर) जाओ जाओ, हम अपने जल-करके दो सौ रुपयोंका नुकसान नहीं कर सकेंगे । चलो चाचा, हम चलें । हमको और भी काम हैं ।

[वेणी और गोविन्द चलनेके लिए तैयार होते हैं ।]

कृषकगण—बड़े बाबू, गांगुली महाराज, तो क्या सचमुच हम लोग मारे जाँयगे ?

गोविन्द—(लौटकर खड़े होकर कुछ मुँह बनाकर) हम क्या जानें कि मारे जाओगे या बचोगे ।

(दोनोंका प्रस्थान)

कृषकगण—हे भगवान् ! क्या सचमुच ही दुखियोंको मार डालोगे ? तुम ऊपर बैठे हुए सब कुछ देख रहे हो, फिर भी कुछ उपाय नहीं करोगे ?

(सबका जल्दीसे प्रस्थान)

चौथा दृश्य

[रमाके मकानका बाहरी हिस्सा । समय सन्ध्या । आँगनमें एक ओर चंडी-मंडपका कुछ हिस्सा दिखाई देता है और दूसरी ओर तुलसीका छोटा सा चौरा है । रमा सन्ध्याका दीपक हाथमें लेकर धीरे धीरे आती है और तुलसीके चौरेके पास दीपक रखकर और गलेमें आँचल डालकर प्रणाम करती है । उसी समय रमेश हौलेसे आकर उसके झुके हुए सिरके पास खड़े हो जाते हैं ।]

रमा—(सिर उठाकर और अचानक रमेशको सामने देखकर आश्चर्यपूर्वक) हैं ! आप कहाँसे ?

रमेश—रमा, मुझे एक बहुत जरूरी कामसे आना पड़ा है।

रमा—(कुछ मुस्कराकर) यह तो खूब आना है। अगर कोई देख ले तो यही समझे कि मैं दीपक जलाकर इतनी देर तक आपको ही प्रणाम कर रही थी! भला इस तरह आकर खड़े होना होता है?

रमेश—रमा, मैं केवल तुम्हारे ही पास आया हूँ।

रमा—(हँसकर) यह तो मैं जानती हूँ। और नहीं तो मैं कब कहती हूँ कि आप मौसीके पास आये हैं?

[इतना कहकर और दीपक हाथमें लेकर रमा खड़ी हो जाती है।]

रमा—कहिए, क्या आज्ञा है?

रमेश—निश्चय ही तुम सब बातें सुन चुकी हो। पानी निकाल देनेके लिए मैं तुम्हारी राय लेने आया हूँ।

रमा—मेरी राय?

रमेश—हाँ, तुम्हारी ही राय लेनेके लिए यहाँतक दौड़ा आया हूँ। रमा, मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि दुखियोंकी इतनी बड़ी विपत्तिके समय तुम कभी 'ना' न करोगी।

रमा—पानी निकाल देना तो अवश्य उचित है। लेकिन रमेश भइया, यह काम होगा किस तरह? बड़े भइयाकी तो राय नहीं है।

[वेणी और गोविन्दका प्रवेश।]

वेणी—नहीं, मेरी राय नहीं है। और क्यों होने लगी? तुम्हें यह भी खबर है कि दो-तीन सौ रुपयोंकी मछलियाँ निकल जायँगी? यह रुपया क्या किसान लोग दे देंगे?

रमेश—किसान तो गरीब हैं, वे इतना रुपया कहाँसे लावेंगे? बड़े भइया, जरा आप इस मामलेको अच्छी तरह समझ देखें।

वेणी—सो देख लिया है। लेकिन रमेश, यह बात तो समझमें नहीं आती कि हम लोग आखिर अपने इतने रुपयोंका नुकसान क्यों करें। (गोविन्दसे) चाचा देखा, हमारे भाईसाहब इसी तरह जमींदारी करेंगे!—अरे रमेश भइया, सबेरेसे अब तक वे सब हरामजादे मेरे यहाँ ही पड़े हुए रो गा रहे थे। मैं सब जानता हूँ। मैं पूछता हूँ कि क्या तुम्हारे यहाँ दरबान नहीं है? या उसके पैरोंमें

चमरौधा जूते नहीं हैं ? जाओ, अपने घर जाकर यही इन्तजाम करो। पानी आपसे निकल जायगा।

[इतना कहकर गोविन्दके साथ मिलकर ही ही हा हा करके हँसने लगते हैं।]

रमेश—लेकिन बड़े भइया, यह समझ लीजिए कि अगर हम तीनों आदमी अपने दो सौ रुपयोंका नुकसान बचानेके फेरमें रहेंगे तो उन गरीबोंका साल-भरका अन्न मारा जायगा। चाहे जैसे हो उनका पाँच-सात हजार रुपयोंका नुकसान हो जायगा।

वेणी—हो जायगा, तो हो जाने दो। उनका चाहे पाँच हजारका नुकसान हो और चाहे पचास हजारका, यहाँसे तो सारा सदर खोद डालनेपर भी पाँच पैसे बाहर नहीं निकलेंगे। भैया, इन सालोंके लिए दो दो सौ रुपये बिगाड़ डाले जायँ ?

रमेश—तो फिर ये लोग साल-भर तक खायँगे क्या ?

वेणी—(हँसकर, सिर हिलाकर, थूककर और अन्तमें स्थिर होकर) खायँगे क्या ? तुम देखना, ये सब साले जमीन बन्धक रखकर हम ही लोगोंके पास रुपये उधार लेनेके लिए दौड़े आवेंगे। भइया, जरा अपना मिजाज ठंढा रखकर काम करो। अपने जेठे किसी तरह जोड़-जाडकर यह जो थोड़ी-सी जूठन छोड़ गये हैं, सो हम लोगोंको भी हाथ पैर हिलाकर, जोड़-जाडकर, खा-पीकर फिर अपने लड़के-बालोंके लिए रख जाना है।—वे लोग खायँगे क्या ? उधार कर्ज लेकर खायँगे। नहीं तो, इन सालोंको फिर छोटी जात क्यों कहा जाता है ?

गोवि०—भइयाजी, यह तो ऋषियों-मुनियोंका और शास्त्रोंका वाक्य है। यह कोई हमारी तुम्हारी बात तो नहीं है !

रमेश—बड़े भइया, जब आप निश्चय कर चुके हैं कि कुछ भी न करेंगे, तो फिर व्यर्थ बहस करनेमें कोई लाभ नहीं है।

वेणी—नहीं, बिलकुल नहीं। (रमासे) रमा, तुम्हारे पीरपुरवाले अकबरअली और उसके लड़कोंके पास खबर भेज दी गई है। (गोविन्दसे) चलो चाचा, जरा हम लोग उधर भी चलकर देख-सुन आवें। सन्ध्या हो रही है।

गोविन्द—चलो भइया, चलें।

[दोनोंका प्रस्थान]

रमेश—रमा, तुम अपनी सम्मति दे दो। खाली उनके मंजूर न करनेसे ही इतना अन्याय नहीं हो सकता। मैं अभी जाकर बाँध काटे देता हूँ।

रमा—लेकिन मछलियोंको रोक रखनेका क्या बंदोबस्त करेंगे ?

रमेश—जल इतना अधिक है कि मछलियोंको रोकनेका कोई बन्दोबस्त हो ही नहीं सकता। यह हानि हम लोगोंको बरदाश्त करनी ही पड़ेगी, नहीं तो सारा गाँव मारा जायगा।

[रमा चुप रहती है।]

रमेश—तो फिर तुम्हारी अनुमति है ?

रमा—नहीं। मैं इतने रुपयोंका नुकसान नहीं उठा सकूँगी। इसके सिवा यह सारी सम्पत्ति मेरे भाईकी है। मै तो उसकी अभिभाविका मात्र हूँ।

रमेश—नहीं, मैं जानता हूँ, इसमें आधी-सी सम्पत्ति तुम्हारी भी है।

रमा—सिर्फ नामके लिए। पिताजी अच्छी तरह जानते थे कि सारी सम्पत्ति यतीन्द्रको ही मिलेगी। इसीलिए वे आधी सम्पत्ति मेरे नाम लिख गये हैं।

रमेश—(विनयपूर्ण स्वरमें) रमा, यह कितने-से रुपयोंकी बात है ? फिर तुम्हारी अवस्था और सबसे अच्छी है। तुम्हारे लिए यह नुकसान नुकसान ही नहीं है। मै प्रार्थना करता हूँ कि इसके लिए तुम इतने लोगोंको भूखों मत मारो। मै सच कहता हूँ कि मैंने स्वप्नमें भी यह नहीं सोचा था कि तुम इतनी निष्ठुर हो सकोगी।

रमा—अगर अपना नुकसान न कर सकनेके कारण मैं निष्ठुर ठहरूँ, तो खैर, निष्ठुर ही सही। और फिर अगर आपको इतनी ही दया है, तो आप स्वयं ही इस हानिकी पूर्ति क्यों नहीं कर देते ?

रमेश—रमा, मनुष्यकी परख तभी होती है जब रुपयोंका मामला आकर पड़ता है। इसी जगह धोखा-धड़ी नहीं चलती। यहीं मनुष्यका सच्चा स्वरूप दिखाई दे जाता है। आज तुम्हारा भी वही सच्चा स्वरूप दिखाई पड़ गया। लेकिन मैंने कभी नहीं सोचा था कि तुम ऐसी हो। मैं समझता था कि तुम इनसे कहीं बढ़कर हो,—इनसे बहुत ऊपर हो। लेकिन तुम वैसी नहीं हो। तुम्हें निष्ठुर कहना भी भूल है। तुम बहुत ही नीच, बहुत ही छोटी हो।

रमा—क्या कहा ? क्या हूँ ?

रमेश—तुम बहुत ही हीन और नीच हो। तुमने यह बात अच्छी तरह समझ ली है कि इस समय मैं कितना अधिक व्याकुल हो रहा हूँ, और इसी लिए तुम इस समय दुखियोंको भूखों मारकर उनका दाम मुझसे वसूल करना चाहती

हो। यह बात तो बड़े भइया भी अपने मुँहसे नहीं कह सके थे। पुरुष होनेपर भी जो बात उनके मुँहसे नहीं निकल सकी, स्त्री होनेपर भी वह तुम्हारे मुँहसे अच्छी तरह निकल पड़ी। अच्छा रमा, मैं आज तुमसे एक बात कहे जाता हूँ कि इससे भी अधिक हानिकी पूर्त्ति मैं कर सकता हूँ, लेकिन संसारमें जितने पाप हैं उन सबसे बढ़कर पाप है मनुष्यकी दयाके ऊपर अत्याचार करना। आज तुमने वही अत्याचार करके मुझसे रुपये वसूल करनेका जाल रचा है।

[रमा विह्वल और हत बुद्धिकी तरह चुपचाप देखती रहती है।]

रमेश—यह ठीक है कि तुम लोग यह बात अच्छी तरह जानते हो कि मेरी दुर्बलता कहाँ है, लेकिन वहाँ निचोड़नेसे आज तुम्हें एक बूँद भी रस नहीं निकलेगा। लेकिन मैं क्या करूँगा, सो भी तुम्हें बतलाये जाता हूँ। मैं अभी जाकर जबरदस्ती बाँध काटे देता हूँ। अगर तुम लोग मुझे रोक सको तो रोकनेकी चेष्टा कर देखो।

[रमेश चलने लगता है। रमा उसे पुकारती है।]

रमा—जरा सुनिए। मेरे घरमें खड़े होकर आपने जो मेरा मनमाना अपमान किया, उसका तो कोई जवाब मैं नहीं दूँगी। लेकिन यह काम करनेकी आप कदापि चेष्टा न करें।

रमेश—क्यों ?

रमा—कारण, इतने अपमानके बाद भी आपके साथ झगड़ा करनेकी मेरी इच्छा नहीं होती। और—

रमेश—और क्या ?

रमा—और—और शायद वहाँ अकबर सरदारका दल भी जा पहुँचा है।

रमेश—मैं नहीं जानता कि तुम्हारे अकबर सरदारके दलमें कौन कौन हैं और जानना भी नहीं चाहता। लड़ाई-झगड़ा करना मैं पसन्द नहीं करता, लेकिन अब तुम्हारे सद्भावका भी मेरे निकट कोई मूल्य नहीं रह गया है।

(जल्दीसे प्रस्थान)

[मौसीका प्रवेश।]

मौसी—यहाँ जोर जोरसे कौन बोल रहा था रमा ? गला तो कुछ पहचाना हुआ मालूम होता है।

रमा—कोई नहीं।

मौसी—तो क्या मैं बिना किसीके बोले ही सुन रही थी ? सन्ध्याका दीपक जलाकर पूजा करने बैठी थी। ऐसा मालूम हुआ कि कोई साँड़ दहाड़ रहा है। मुझे पूजा छोड़कर आना पड़ा।

रमा—वह चला गया। तुम फिर जाकर पूजामें बैठ जाओ (नेपथ्यकी ओर) कुमुदा !

[दासीका प्रवेश]

कुमुदा—क्या है बहन ?

रमा—मैं जरा ताईजीके यहाँ जाऊँगी। मेरे साथ चलो।

मौसी—इस समय वहाँ किस लिए जाती हो ?

रमा—देखो मौसी, सभी कुछ तुम्हें जानना होगा इसका कुछ अर्थ नहीं है। चलो कुमुदा।

कुमुदा—चलो बहन।

(दोनोंका प्रस्थान)

मौसी—अरे बाप रे ! जैसे मार ही बैठेगी। अगर लोगोंने तारकेश्वरका हाल न सुना होता !—और मैं इसीके लिए लोगोंके साथ झगड़ा कर करके मरती हूँ !

(प्रस्थान)

[वेणी, गोविन्द, घायल अकबर और उसके दोनों लड़के गौहर और उसमान प्रवेश करते हैं।]

अकबर—(खूँटीके सहारे बैठ जाता है। उसका सारा मुँह खूनसे तर है)—या अल्लाह !

गौहर—(अपने सिरका खून हाथसे पोंछकर) क्यों अब्बा, क्या ज्यादा दरद मालूम होता है ?

अकबर—या अल्लाह !

वेणी—मेरी बात सुनो अकबर, थाने चलो। अगर सात बरसके लिए उसे जेल न भेज दिया तो मैं घोषाल-वंशका लड़का नहीं।

[रमाका प्रवेश।]

रमा—एँ ! तुम लोगोंका यह हाल किसने किया अकबर ? (पास ही बैठ जाती है।)

अकबर—(आकाशकी ओर हाथ उठाकर) अल्लाहने !

वेणी—अल्लाह ! अल्लाह ! यहाँ बैठकर 'अल्लाह अल्लाह' करनेसे क्या होगा ? मैं कहता हूँ कि थाने चलो । अगर मैं इसके बदलेमें दस बरसके लिए उसे जेल न भेज दूँ तो—रमा, तुम चुप क्यों हो ? इससे कहो न कि मेरे साथ थाने चले ।

रमा—अकबर, तुम्हें किसने इस तरह जख्मी किया ?

अकबर—छोटे बाबूने बिटिया ।

रमा—यह भी कहीं हो सकता है अकबर ? क्या अकेले छोटे बाबूने तुम तीनों बाप-बेटोंको घायल कर दिया ? यह तो तीन सौ आदमी भी नहीं कर सकते !

अकबर—यही तो हुआ बिटिया ।—शाबाश बाबू ! सचमुच तुमने अपनी माँका दूध पीया है ! लाठी चलाना इसे कहते हैं !

गोवि०—अरे यही बात तो थानेमें चलकर कह देनेके लिए कहता हूँ । तुम किसकी लाठीसे घायल हुए ? छोटे बाबूकी या उस हरामजादे भजुआकी लाठीसे ?

अकबर—उस ठिंगने हिन्दुस्तानीकी लाठीसे ? वह लाठी चलाना क्या जाने ? क्यों रे गौहर, तेरी पहली ही चोटसे वह बैठ गया था न ?

[गौहरने मुँहसे कुछ नहीं कहा । सिर्फ सिर हिलाकर 'हाँ' कर दिया ।]

अकबर—अगर मेरे हाथकी चोट बैठती तो वह बचता भी नहीं । गौहरकी लाठीसे ही वह 'बापरे' कहके बैठ गया बिटिया ।

[गौहर फिर सिर हिलाता है ।]

अकबर—बिटिया, इसके बाद जब छोटे बाबू उसके हाथकी लाठी लेकर बाँधपर जाकर अड गये तब हम तीनों बाप-बेटे भी उन्हें वहाँसे नहीं हटा सके । अँधेरेमें उनकी आँखें बाघकी आँखोंके तरह चमकने लगीं । उन्होंने कहा—अकबर, तू बूढ़ा आदमी है, इसलिए अलग हट जा । अगर बाँध नहीं काटा जायगा तो गाँव-भरके लोग भूखों मर जायँगे, इसलिए इसे तो काटना ही होगा । आखिर तू भी तो खेती-बारी करता है, तेरे पास भी तो तेरे गाँवमें जमीन जायदाद है । जरा समझ देख कि अगर वह सब बरबाद होने लगे तो तुझे कैसा मालूम हो ? मैंने सलाम करके कहा कि अल्लाहकी कसम छोटे बाबू, तुम एक बार रास्ता छोड दो । बिटिया रानीने हमें भेजा है और हम लोग अपनी जान लडा देना कबूल करके आये हैं । तब उन्होंने चौंककर पूछा कि क्या तुम लोगोंको रमाने भेजा है; मुझे मारनेके लिए अकबर ? मैंने कहा कि छोटे बाबू, बाँध काटना बन्द कर दो

और घर जाओ जिससे मैं तुम्हारी आडमें जो ये लोग धड़ाधड़ कुदाल चला रहे हैं, उन सबके सिर फोड़कर चला जाऊँ।

वेणी—बेईमान साले! उसे सलाम बजाकर यहाँ शेखी मार रहे हैं।

[अकबर और उसके दोनों लड़के प्रतिवाद करनेके लिए हाथ उठाते हैं।]

अकबर—खबरदार बड़े बाबू! 'बेईमान' मत कहना। हम मुसलमानके लड़के और सब सह सकते हैं, मगर यह नहीं सह सकते। (हाथसे मुँहपरका खून पोंछकर) देखती हो बिटिया, ये हमें बेईमान कहते हैं! घरके भीतर बैठे हुए बेईमान कह रहे हो बड़े बाबू, यदि अपनी आँखों देखते तो मालूम हो जाता कि छोटे बाबू क्या हैं!

वेणी—(मुँह चिढ़ाकर) छोटे बाबू क्या हैं!—यही चलकर थानेमें क्यों नहीं बतला आते? कह देना कि हम लोग बाँधपर पहरा दे रहे थे। इतनेमें छोटे बाबू चढ़ आये और हम लोगोंको मारा।

अकबर (जीभ काटकर)—तोबा, तोबा! क्या दिनको रात कहनेके लिए कहते हो बड़े बाबू?

वेणी—यह नहीं तो और कुछ कह देना। आज रातको थानेमें चलकर अपना घाव तो दिखला आओ। कल वारण्ट निकलवाकर एकदम हाजतमें बन्द करा दूँगा।—रमा, जरा तुम भी इन्हें समझाओ न। फिर ऐसा मौका और कभी नहीं मिलेगा!

[रमा चुप रहती है और अकबरके मुँहकी ओर देखती है।]

अकबर—(सिर हिलाकर) नहीं बिटिया, यह मुझसे नहीं होगा।

वेणी—(कड़ककर) क्यों, होगा क्यों नहीं भला?

अकबर—(क्रुद्धसे स्वरसे) आप भी कैसी बातें करते हैं बड़े बाबू! क्या मुझमें शरम-हया नहीं है? क्या चार गाँवके आदमी मुझे सरदार नहीं कहते? बिटिया रानी, हुक्म दो तो मैं अपराधी बनकर जेल जा सकता हूँ। लेकिन फरियाद करनेके लिए कौन सा काला मुँह लेकर जाऊँ?

रमा—क्या तुम सचमुच ही थाने न जा सकोगे अकबर?

अकबर—नहीं बिटिया, मैं और सब कुछ कर सकता हूँ लेकिन थानेमें जाकर अपनी चोट नहीं दिखला सकता। उठो गौहर, चलो घर चलें। हम लोग नालिश-फरियाद नहीं कर सकेंगे!

[तीनों उठकर खड़े हो जाते हैं और चलना चाहते हैं।]

गोवि०—बड़े बाबू, ये लोग तो सचमुच ही चले जा रहे हैं। यह तो कुछ भी नहीं हुआ!

वेणी—रमा, इन्हें रोको न! अगर यह अवसर हाथसे गवाँ दिया तो फिर नहीं मिलनेका।

[रमा चुप रहकर सिर झुका लेती है। अकबर और उसके दोनों लड़के लाठी टेकते हुए किसी तरह बाहर चले जाते हैं।]

वेणी—ओह, मैंने सब समझ लिया!

गोवि०—हूँ, जो सुना गया था, मालूम होता है वह झूठ नहीं है।

(दोनोंका जल्दीसे प्रस्थान।)

रमा—रमेश भइया, मैंने तो स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि तुम यह कर सकते हो और तुममें इतनी शक्ति है!

पाँचवाँ दृश्य

[गाँवका एक हिस्सा। कई टूटे-फूटे मन्दिरोंके भग्नावशेष दिखलाई देते हैं। सारा स्थान वृक्षों, लताओं और गुल्मोंसे भरा हुआ है। ऐसा मालूम होता है कि इस तरफ कदाचित् ही कोई आता-जाता है।]

[वेणी और गोविन्दका प्रवेश]

गोवि०—(चौकन्ना होकर और इधर-उधर देखकर) कोई साला यहाँ भी कहीं छिपा हुआ न सुनता हो। भइया, मैं तो जाल फैलाकर और उसकी डोरी हाथमें लेकर बैठा हूँ, जरा-सा खींचा है कि धड़ामसे गिर पड़ा।

वेणी—काम तो हो गया न?

गोवि०—और नहीं तो क्या भइया, मैं तुम्हें यों ही इस जंगलमें बुला लाया हूँ?—अबे साले भैरव आचार्य, तेरी एक कौडीकी तो ताकत नहीं और तू जाता है हम लोगोंके खिलाफ? तू चला है दूसरोंको बचाने? अब पहले अपने बाप-दादाकी जमीन तो बचा ले! जरा मैं भी देखूँ कि किस तरह तू अपनी लड़कीका ब्याह करता है!

वेणी—तो क्या डिगरी हो गई?

गोवि०—(दोनों हाथोंकी दसों उँगलियाँ ऊपर उठाकर) एक हजारकी। लेकिन भइया, अब खाली बातोंसे काम न चलेगा,—आधे-आध होगा!

वेणी—(बहुत प्रसन्न होकर) अरे चाचा, आधो-आध क्यों, बल्कि दस आने और छः आने।

गोवि०—शाबाश मेरे भइया, जीते रहो! और सिर्फ यही नहीं भइया, दुर्गा-पूजा आ रही है। जरा अबकी बार यह भी देखना होगा कि यदु मुकुर्जीकी लड़की इस बार अपने यहाँ दुर्गाकी स्थापना कैसे करती है! और फिर लोगोंको खूब अच्छी तरह यह भी दिखला दूँगा कि अगले फागुनमें वह अपने भाईका जनेऊ किस तरह करती है।—तब तो मेरा नाम गोविन्द गांगुली।

वेणी—तो फिर वह तारकेश्वरवाली घटना सच है?

गोवि०—सच नहीं होगी? वह साला नटवर क्या कुछ बतलाना चाहता था? इनामका लोभ दिया, पीठपर हाथ फेरा, पुचकारा, लेकिन किसी तरह एकसे दो नहीं हुआ। तब मैंने अपने पैरोंकी धूल उसके सिरपर लगाकर कहा कि भइया, चाहे तुम रमाके चाकर हो और चाहे जो कुछ हो, लेकिन हो तो शूद्र ही। शूद्रके सिवा तो और कुछ हो ही नहीं। बाल-बच्चेवाले ठहरे। ब्राह्मणके पैरोंकी धूल तुम्हारे सिरपर है। अब अगर तुम झूठ बोलोगे तो यह रात नहीं बीतने पायेगी और तुम्हें साँप डस लेगा।

वेणी—तब?

गोवि०—सालेका मुँह रुआसा हो गया। मैंने साहस दिलाते हुए कहा—नटवर, अगर यह नौकरी छूट जायगी तो तुम्हें बहुतेरी नौकरियाँ मिल रहेंगी; लेकिन जान चली जायगी तो फिर कभी न मिलेगी। तब उसने शुरूसे आखिर तक सारा हाल कह दिया।—शामकी छः बजेकी गाड़ीमें मालकिन घर नहीं आ सकीं। छोटे बाबू रात-भर वहीं रहे। खाना, पीना, हँसी-मजाक सभी कुछ होता रहा।—जाने दो, दूसरोंकी चर्चा और निन्दा करनेकी जरूरत नहीं। लेकिन हाँ, घटना बिलकुल सही है।

वेणी—देखा न चाचा, उस दिन अकबरको किसी तरह थाने नहीं जाने दिया!

गोवि०—भला जाने कैसे देती? अरे भइया, कहीं जाने दिया जाता है? हरगिज नहीं।

वेणी—हूँ। देखो, अँधेरा हो रहा है। चलो चला जाय।

गोवि०—चलो। (सहसा वेणीका हाथ पकड़कर) देखो भइया, मैं कहे

रखता हूँ कि अगर भतीजा आधी जायदाद निकाल ले जायगा तो ठीक न होगा। इसके लिए सावधान रहना होगा।

वेणी—चाचा, तुम बेफिक्र रहो। जब तक मैं जीता हूँ, तब तक ऐसा नहीं हो सकता।

गोवि०—इस बार रमाको हाटका हिस्सा छोड़ देनेको रास्ता न मिलेगा, सो भी तुमसे कहे रखता हूँ बड़े बाबू। लेकिन अभी ये सब बातें दबाये रखना। एकाएक कहीं जाहिर न कर बैठना।

वेणी—(कुछ मुस्कराकर) देखा जायगा।

(दोनोंका प्रस्थान)

छठा दृश्य

[रमेशके घरका अन्तःपुर। बहुत रात बीत जाने पर भी रमेश अपने सोनेके कमरेमें बैठा हुआ लिख-पढ़ रहा है। अकस्मात् नेपथ्यमें किसीके रोनेका शब्द सुनाई पड़ता है और थोड़ी ही देर बाद गोपाल गुमास्तेके गलेसे लिपटे हुए भैरव आचार्य खूब जोर जोरसे चिल्लाते हुए आते हैं। रमेश घबराकर उठ खड़ा होता है।]

भैरव—(रोते हुए) छोटे बाबू, मैं तो जान और माल दोनोंसे मारा गया।

रमेश—क्यों गुमाश्ताजी, क्या बात है ?

गोपाल—बाबूजी, काम खतम करके सोनेके लिए जा रहा था कि अचानक आचार्यजी न जाने कहाँसे दौड़े हुए आये और मेरे गलेसे लिपट गये। अब न तो ये गला ही छोड़ते हैं और न इनका रोना ही बन्द होता है।

रमेश—आचार्यजी, क्या हुआ है ?

भैरव—बाबूजी, मैं तो बिलकुल बरबाद हो गया। अब तो मुझे लड़कों बच्चोंके साथ पेड़-तले ही जाकर रहना पड़ेगा।

रमेश—क्यों पेड़-तले क्यों ? मकान क्या हुआ ?

भैरव—मकान कहाँ है ? वह तो नीलाम हो गया।

रमेश—अभी सबेरे तक तो था। इसी बीचमें किसने नीलाम करा लिया ?

भैरव—गोविन्द गांगुलीके चचिया ससुर कोई सनत् मुकर्जी हैं, उन्होंने नीलाम करा लिया है। (जोरसे रोने लगते हैं।)

गोपाल—अरे, मेरा गला तो छोड़िए। बाबूजीसे सब बातें समझाकर कहिए, —किसने लिया है और क्यों लिया है। ख्वाहमख्वाह मुझे इस तरह जकड़कर रखनेसे क्या होगा ? छोड़िए।

भैरव—(गला छोड़कर) एक हजार सतासी रुपये पाँच आने छः पाई, —बाबूजी, धन भी गया और प्राण भी।

गोपाल—रुपये उधार लिये थे ?

भैरव—नहीं गुमाश्ताजी, एक पैसा भी नहीं। बिलकुल झूठ है, दस्तावेज तक झूठा और जाली है। मैं तो कुछ भी नहीं जानता कि कब नालिश हुई, कब समन्स निकला, कब डिगरी हुई और घर बार नीलाम हो गया। कल इधर-उधरसे घुस-फुस सुनकर जब सदर गया तब पता चला कि अब बाल-बच्चोंको लेकर मुझे पेड़ तले रहना पड़ेगा। एक हजार सतासी रुपये पाँच आने छः पाई—

रमेश—ऐसी बेढब बात तो कभी नहीं सुनी गुमाश्ताजी !

गोपाल—बाबूजी, गाँव देहातमें ऐसा बहुत हुआ करता है। जो लोग गरीब होते हैं उनपर जब बड़े आदमियोंका कोप होता है, तब वे इसी तरह माल और जानसे मारे जाते हैं। यह सब वेणी बाबू और गांगुलीकी कारस्तानी है। आचार्यजी शुरूसे ही हम लोगोंकी तरफ हैं, इसीलिए उनपर यह विपत्ति आई है।

भैरव—हाँ छोटे बाबू, यही बात है। इसी लिए मुझपर यह विपत्ति आई है।

रमेश—लेकिन गुमास्ताजी, अब इसका उपाय ?

गोपाल—यह बड़े खर्चेका काम है। यह कर्ज भी झूठ है, सबूत भी झूठ है और इसके गवाह भी झूठे हैं। मालूम होता है कि और किसीने इनके नामसे समन्स ले लिया है और उसीने अदालतमें जाकर यह भी बयान दे दिया है कि मैंने कर्ज लिया है। जब तक सदरमें जाकर सब बातोंका पूरा पूरा पता न लगाया जाय, तब तक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

रमेश—तो फिर आप जायँ। सब बातोंका पता लगावें और जितना खर्च हो करके इसका प्रतीकार करें। ऐसा यत्न करें कि जिसमें आगेसे किसीको इतना बड़ा अत्याचार करनेका साहस न हो।

भैरव—(अचानक रमेशके पैर पकड़कर) बाबूजी, आप चिरंजीवी हों। धन, पुत्र और लक्ष्मी प्राप्त करके आप राजा हों। भगवान आपको—

रमेश—(पैर छुड़ाकर) आचार्यजी, अब आप घर जायँ। जो कुछ करना मुनासिब होगा, वह मैं अवश्य करूँगा।

भैरव—भगवान आपको—

रमेश—आचार्यजी, रात बहुत हो गई है। आज मैं बहुत थका हुआ हूँ।

भैरव—भगवान आपको दीर्घजीवी करें। भगवान आपको राजा करें—

(प्रस्थान)

रमेश—(ठंढी साँस लेकर) गुमाश्ताजी, यही है हम लोगोंके अभिमानका धन ! यही है हमारे देशका शुद्ध, शान्त और न्यायनिष्ठ देहाती समाज !

गोपाल—जी हाँ, यही है। सभी लोगोंको मालूम हो जायगा कि यह काम वेणी बाबूका है, सभी लोग आपसमें चुपचाप बातें भी करेंगे, लेकिन कोई खुलकर इस अत्याचारका प्रतिवाद नहीं करेगा। उस बार गागुलीने अपनी विधवा बड़ी भौजाईको मारकर घरसे बाहर निकाल दिया, लेकिन चूँकि वेणी बाबू उनके मददगार हैं, इसलिए सब लोग चुप बैठे रहे। वह रो रोकर सब लोगोंसे सारा हाल कहती फिरी। सब लोगोंने यही जवाब दिया कि हम क्या करें। भगवानसे कहो, वही इसका न्याय करेंगे।

रमेश—उसके बाद ?

गोपाल—उसके बाद वही गागुली अब लोगोंको जातिसे बाहर करते फिरते हैं। इस मरे हुए देहाती समाजमें इतना साहस नहीं कि इस बारेमें कुछ भी कह सके। लेकिन मैंने ही अपने लड़कपनमें देखा है कि तब ऐसी हालत नहीं थी। विधवा बड़ी भौजाईपर हाथ छोड़कर कोई सहजमें छुटकारा नहीं पा सकता था। उस समय समाज दंड देता था और अपराधीको वह दड सिर झुकाकर स्वीकृत करना पड़ता था।

रमेश—तो फिर क्या अब देहाती समाज कुछ भी नहीं रह गया ?

गोपाल—जो कुछ है, सो तो जबसे आप यहाँ आये हैं, तबसे बराबर देख ही रहे हैं। जो पीड़ितोंकी रक्षा नहीं करता, जो दुखियोंको केवल दुःखके मार्ग—पर ढकेल देता है, उसीको हम लोग जो 'समाज' कहनेका महापाप करते हैं। वह हम लोगोंको बराबर रसातलकी ओर ही लिये जा रहा है।

रमेश—(चकित होकर) गुमाश्ताजी, ये सब बातें आपको मालूम किससे हुईं ?

गोपाल—अपने स्वर्गीय मालिकसे। आपने जो इस समय भैरवका उद्धार करनेका विचार किया, सो यह शक्ति आपने कहाँसे पाई ? यह उन्हींकी दया है। छोटे बाबू, इस तरह गरीबों और विपन्नोंका उद्धार करते हुए मैंने उन्हें अनेक बार देखा है।

रमेश—(दोनों हाथोंसे अपना मुँह ढककर) आह पिताजी !—

गोपाल—छोटे बाबू, रात प्रायः समाप्त हो रही है; आप आराम करें।

रमेश—हाँ, मैं सोता हूँ। आप भी घर जायँ।

[गोपाल चला जाता है। रमेश सोनेकी तैयारी करता ही है कि अचानक दरवाजेके पास किसीको देखकर चौंक पड़ता है।]

रमेश—कौन ? कौन खड़ा है ?

[यतीन्द्र दरवाजेमेंसे अन्दर झाँकता है।]

यतीन्द्र—छोटे भइया, मैं हूँ।

रमेश—(उसके पास पहुँचकर) कौन, यतीन्द्र ? इतनी रातको ? मुझे बुला रहे हो ?

यतीन्द्र—जी हाँ। आपहीको।

रमेश—मुझे 'छोटे भइया' कहनेको तुमसे किसने कहा ?

यतीन्द्र—जीजीने।

रमेश—रमाने ? क्या उन्होंने तुम्हें कुछ कहनेके लिए भेजा है ?

यतीन्द्र—नहीं। जीजीने कहा कि मुझे अपने साथ छोटे भइयाके यहाँ ले चलो। वे सामने ही तो खड़ी हैं। (दरवाजेके बाहर देखता है।)

रमेश—(घबराकर और आगे बढ़कर) आज मेरा यह कैसा सौभाग्य है ! लेकिन मुझे न बुलवाकर इतनी रातको आप ही क्यों चली आईं ? आओ, अन्दर आओ।

[रमा बहुत ही सकुचित भावसे अन्दर आती है और दरवाजेके पास ही जमीनपर बैठ जाती है। यतीन्द्र अपनी बहनके पास बैठना चाहता है। परन्तु रमेश उसे एक आराम-कुरसी खींचकर उसपर लेटा देते हैं।]

रमा—अब रात बाकी नहीं है। सबेरा होना ही चाहता है। मैं सिर्फ एक भिक्षा माँगनेके लिए आई हूँ। बतलाइए, देंगे?

रमेश—मेरे पास भिक्षा माँगनेके लिए आई हो? आश्चर्य! कहो, क्या चाहती हो?

रमा—(सिर ऊपर उठाकर और थोड़ी देर तक रमेशकी तरफ टक लगाकर देखनेके बाद) पहले आप वचन दीजिए।

रमेश—(सिर हिलाकर) नहीं, सो नहीं दे सकता। बिना कुछ पूछे वचन देनेकी जो शक्ति मुझमें थी, रमा, वह तुमने स्वय अपने हाथोंसे नष्ट कर दी है।

रमा—मैंने नष्ट कर दी है?

रमेश—हाँ, तुम्हींने। तुम्हारे सिवा ससारमें यह शक्ति और किसीमें नहीं थी। आज मैं तुमसे एक सत्य बात कहूँगा रमा, इच्छा हो तो विश्वास करना और न हो तो न करना। लेकिन वह चीज अगर मर न गई होती और सदाके लिए बिलकुल नष्ट न हो गई होती तो शायद यह बात तुम्हें किसी दिन भी न सुना सकता। लेकिन आज हम दोनोंमेंसे किसीकी भी लेश-मात्र हानि होनेकी सम्भावना नहीं है, इसीलिए आज प्रकट कर रहा हूँ कि उस दिन तक भी मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं था जो तुम्हें न दे सकता। लेकिन जानती हो कि क्यों?

रमा—(सिर हिलाकर) नहीं।

रमेश—लेकिन सुनकर नाराज मत होना और लज्जित भी न होना। समझ लेना कि यह कोई पुराने जमानेकी कहानी सुन रही हो। रमा, मैं तुमसे प्रेम करता था। मैं समझता हूँ कि जितना मैं तुम्हें चाहता था, उतना शायद कभी किसीने किसीको न चाहा होगा। लड़कपनमें माँके मुँहसे सुना था कि हम लोगोंका ब्याह होगा। उसके बाद जिस दिन सब कुछ नष्ट हो गया, उस दिन,—इतने बरस बीत गये, फिर भी ऐसा मालूम होता है कि वह कलकी बात है।

[रमेशके मुखकी ओर देखकर रमा क्षण-भरके लिए सिहिर उठती है। और फिर सिर झुकाकर स्तब्ध और निश्चल बैठी रहती है।]

रमेश—तुम सोचती हो कि तुम्हें यह सारी कहानी सुनाना अन्याय है। मेरे मनमें भी यही सन्देह था, और इसीलिए, उस दिन भी, जब तारकेश्वरमें केवल एक दिनके आदर सत्कारसे मेरे समस्त जीवनकी धारा बदल दी गई, चुप ही रहा था।

यद्यपि उस दिन मैंने कुछ कहा नहीं था; लेकिन, उस दिन मेरी उस नीरवतामें जो व्यथा थी, उसे मापनेका मान-दड शायद केवल अन्तर्यामीके ही हाथमें है।

रमा—(असहिष्णु होकर) जो उसके हाथमें है, वह उसीके हाथमें रहने दो न रमेश भइया।

रमेश—सो तो है ही रमा।

रमा—तो—तो आज ही अपने मकानमे इस प्रकार मेरा अपमान क्यों कर रहे हैं ?

रमेश—अपमान ? बिलकुल नहीं। इसमे मान-अपमानकी कोई बात ही नहीं है। जिन लोगोंकी यह कहानी सुन रही हो वह रमा भी तुम पहले कभी नहीं थीं और वह रमेश भी अब मैं नहीं हूँ।

रमा—रमेश भइया, आप अपनी ही बात कहें। रमाका हाल मै आपसे अधिक जानती हूँ।

रमेश—जो हो, मेरी बात सुनो। नहीं जानता कि क्यों, लेकिन उस दिन मेरा दृढ़ विश्वास हो गया था कि तुम चाहे जो कहो और चाहे जो करो; लेकिन मेरा अमगल किसी तरह सहन न कर सकोगी। शायद सोचा था कि वह जो लड़कपनमे तुमने एक दिन मुझसे प्रेम किया था और वह जो अपने हाथसे मेरी आँखें पोंछ दी थीं, सो शायद आज भी तुम एकदमसे भूल नहीं सकी हो। इसी लिए निश्चय किया था कि बिना तुम्हें कोई बात जतलाये, केवल तुम्हारी छायामें बैठकर, अपने जीवनके समस्त कार्य धीरे धीरे कर जाऊँगा। लेकिन उस रातको जब मैंने खुद अकबरके मुँहसे सुना कि तुमने स्वय ही,—अरे यह क्या ? बाहर इतना हल्ला काहेका हो रहा है ?

[जल्दीसे गोपालका प्रवेश।]

गोपाल—छोटे बाबू !

[अचानक रमाको देखकर स्तब्ध होकर रुक जाता है।]

रमेश—क्या हुआ है गुमाश्ताजी ?

गोपाल—पुलिसवालोंने आकर भजुआको गिरिफ्तार कर लिया है।

रमेश—भजुआको ? किस लिए ?

गोपाल—उस दिनकी राधापुरकी डकैतीमें वह शामिल बतलाया जाता है।

रमेश—अच्छा, मैं आता हूँ। आप बाहर चलें।

(गोपालका प्रस्थान।)

रमेश—यतीन्द्र सो गया है। इसे सोने दो। लेकिन तुम अब यहाँ क्षण-भर भी मत ठहरो। खिड़कीके रास्तेसे निकल जाओ। पुलिस बिना तलाशी लिये नहीं मानेगी।

रमा—(खड़ी होकर भीत स्वरसे) स्वयं तुम्हारे लिए तो कोई भय नहीं है?

रमेश—कह नहीं कह सकता रमा। यह भी नहीं जानता कि मामला कहाँतक बढ़ गया है।

रमा—तुम्हें भी तो गिरिफ्तार कर सकते हैं?

रमेश—हाँ, कर सकते हैं।

रमा—जुल्म भी कर सकते हैं?

रमेश—यह भी असम्भव नहीं है।

रमा—(सहसा रोकर) रमेश भइया, मैं नहीं जाऊँगी।

रमेश—(डरकर) जाओगी नहीं?

रमा—वे लोग तुम्हारा अपमान करेंगे, तुम्हारे ऊपर जुल्म करेंगे। नहीं रमेश भइया, मैं किसी तरह नहीं जाऊँगी।

रमेश—(व्याकुल स्वरसे) छीः छीः, तुम्हें यहाँ नहीं ठहरना चाहिए। क्या तुम पागल हो गई हो रानी?

[रमेश हाथ पकड़कर जबरदस्ती उसे बाहर कर देते हैं। उधरसे बहुतसे लोगोंके पैरोंकी आहट और हो-हल्ला अधिक स्पष्ट होने लगता है।]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[विश्वेश्वरीका कमरा । ताईजी और रमेश ।]

ताई—क्यों रमेश, क्या अपने उस पीरपुरवाले नये स्कूलमें ही लगे रहते हो, हमारे स्कूलमें पढ़ाने नहीं जाते ?

रमेश—नहीं । जहाँ परिश्रम व्यर्थ हो, जहाँ कोई किसीका भला न देख सकता हो, वहाँ मेहनत करने और जान लड़ानेमें कोई लाभ नहीं । उलटे अपने ही शत्रु बढ़ जाते हैं । इससे अच्छा तो यही है कि जिन लोगोंका मगल करनेकी चेष्टासे देशका सच्चा मगल हो सकता है, उन्हीं मुसलमानो और छोटी जातिके हिन्दुओंमें ही परिश्रम किया जाय ।

ताई—यह तो कोई नई बात नहीं है रमेश । आजतक संसारमें दूसरोंकी भलाई करनेका भार जिस किसीने अपने सिर लिया है, उसके शत्रुओंकी सख्या सदा बढ़ती ही रही है । इस भयसे जो लोग पीछे हट जाते हैं उन्हींके दलमें अगर तुम भी मिल जाओगे तो फिर बेटा, कैसे काम चलेगा ? यह भारी बोझा भगवानने तुम्हींको उठानेके लिए दिया है और तुम्हें ही इसे उठाकर चलना पड़ेगा । और क्यों रमेश, क्या तुम उन लोगोंके हाथका पानी पीते हो ?

रमेश—(हँसकर) यह देखो, इसी बीच यह बात तुम्हारे कानोंतक भी पहुँच गई ! लेकिन ताईजी, मैं तो तुम्हारा यह जाति-भेद मानता नहीं ।

ताई—जातिभेद नहीं मानते ? यह क्या कोई झूठी बात है ? या जाति-भेद कोई चीज ही नहीं है जो तुम नहीं मानोगे ?

रमेश—जाति-भेद है, यह तो मानता हूँ, लेकिन यह नहीं मानता कि वह कोई अच्छी चीज है । इससे न जाने कितने वैर-विरोध और कितनी हानियाँ होती हैं । मनुष्यको छोटा मानकर अपमान करनेका फल क्या तुम नहीं देखतीं ताईजी ? पासमें पैसा न होनेके कारण उस दिन द्वारिका महाराजका प्रायश्चित्त नहीं हो सका । इसी कारण कोई उनका मृत शरीरतक स्पर्श नहीं करना चाहता था । क्या तुम यह नहीं जानती ?

ताई—जानती हूँ, सब जानती हूँ। लेकिन इसका असल कारण जाति-भेद नहीं है। इसका जो सबसे बडा कारण है, वह यही है कि जिसे यथार्थ धर्म कहते हैं और जो किसी समय यहाँ था, वह अब गाँवोंसे एकदम लुप्त हो गया है। अब बच रहे हैं सिर्फ थोड़ेसे अर्थहीन आचारके कु-संस्कार और उन्हींसे उत्पन्न हुई व्यर्थकी दलबन्दी।

रमेश—क्या इसका कोई प्रतीकार नहीं है ताईजी?

ताई—है क्यों नहीं बेटा, इसका प्रतीकार केवल ज्ञान है। जिस पथपर तुमने पैर रक्खा है, केवल उसी पथसे इसका प्रतीकार हो सकता है। इसीलिए तो बेटा, मैं तुमसे बार बार कहती हूँ कि अपनी जन्म-भूमिका परित्याग करके कहीं मत जाओ। तुम्हारी ही तरह जो घरसे बाहर रहकर बड़े हुए हैं, वे यदि तुम्हारी ही तरह लौटकर फिर अपने गाँवोंमें आ रहते और सब प्रकारके सम्बन्ध तोड़कर शहरोंमें न चले जाते, तो गाँवोंकी इतनी अधिक दुर्गति न होती। वे लोग कभी गोविन्दको सिर चढ़ाकर तुम्हें दूर न भगाते।

रमेश—ताईजी, लेकिन दूर जानेमें तो मुझे कोई दुःख नहीं है।

ताई—लेकिन, यही दुःख तो सबसे बढ़कर दुःख है रमेश। परन्तु यदि तुम इस तरह बीचमें ही सब कुछ छोड़कर चले जाओगे, तो बेटा, तुम्हारी यह जन्म-भूमि तुम्हें कभी क्षमा न करेगी।

रमेश—लेकिन ताईजी, जन्म-भूमि मेरी एककी ही तो है नहीं?

ताई—एक तुम्हारी ही क्या बेटा, केवल तुम्हारी ही मा है। तुम देखते नहीं हो कि माता कभी अपने मुँहसे अपनी सन्तानसे कुछ भी नहीं माँगती? इसीलिए इतने लोगोंके रहते हुए भी किसीके कानोंमें रोनेकी आवाज नहीं पहुँची, लेकिन तुमने तो आते ही सुन ली।

रमेश—(थोड़ी देर तक सिर झुकाकर चुप रहनेके बाद) ताईजी, मैं तुमसे एक बात पूछूँ?

ताई—कौन-सी बात?

रमेश—मैं तो तुम्हारा यह जाति-भेद मानता नहीं, लेकिन तुम तो मानती हो?

ताई—तुम नहीं मानते, इसलिए क्या मैं भी नहीं मानूँगी?

रमेश—किन्तु मै तो सभीका छूआ खाता हूँ। मेरे हाथका छूआ हुआ तो तुम खा नहीं सकोगी ताईजी ?

ताई—खा क्यों नहीं सकूँगी ? तुम तो मेरे लड़के हो। और सो भी क्या ऐसे वैसे ? बहुत बड़े लड़के। क्या मैं स्त्री होकर इतनी बड़ी हिमाकतकी बात मुँहपर ला सकती हूँ ?

रमेश—(झुककर और ताईके चरणोंकी धूल अपने मस्तकपर लगाकर) ताईजी, तुम मुझे यही आशीर्वाद दो कि मै तुम्हें अच्छी तरह पहचान सकूँ।

ताई—(उसकी ठोड़ी पकड़कर और चूमकर) बस बस, हो गया हो गया। लेकिन अभी तक मेरा पूजा-पाठ नहीं हुआ है बेटा, क्या थोड़ी देर बैठ सकोगे ?

रमेश—नहीं ताईजी, मेरा स्कूल जानेका समय हो रहा है।

ताई—अच्छा तो फिर जब समय मिले, तब आना।

(रमेश और ताईका प्रस्थान।)

[एक ओरसे रमाका और दूसरी ओरसे दासीका प्रवेश।]

रमा—राधा, ताईजी कहाँ हैं ?

दासी—अभी अभी पूजा करने गई हैं। ज्यादा देर नहीं लगेगी बहन, जरा बैठ जाओ न ?

[वेणीका प्रवेश। उसके आते ही दासी वहाँसे हट जाती है।]

वेणी—तुम्हें आते देखकर ही आया हूँ रमा, तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं। माँ क्या पूजा करने गई हैं ?

रमा—हाँ, राधाने यही तो कहा।

वेणी—अनेक दाव पेंच सोचकर काम करना होता है बहन, नहीं तो शत्रुको दुरुस्त नहीं किया जा सकता। उस दिन भजुआ हाथमें लाठी लेकर अपने मालिकके हुकमसे तुम्हारे घरपर मछलियाँ वसूल करनेके लिए चढ़ आया था, उसकी रिपोर्ट अगर तुम थानेमें न लिखवा देतीं तो आज उस सालेको इस तरह हाजतमें बन्द कराया जा सकता था ? उसीके साथ अगर बहन, तुम दो-चार बातें और बढ़ाकर रमेशका नाम भी जोड़ देतीं ! लेकिन उस समय तो तुम लोगोंमेंसे किसीने मेरी बात नहीं सुनी। नहीं नहीं, तुम घबराओ नहीं, तुम्हें वहाँ गवाही देनेके लिए नहीं जाना पड़ेगा। और अगर जाना ही पड़े, तो क्या हर्ज है ? अगर जमींदारी सुरक्षित रखना है तो पीछे हटनेसे काम

नहीं चल सकता।—और फिर रमेशने भी तो कष्ट देनेके लिए हमारे दादाजीके लाखों रुपये बरबाद किये हैं। पीरपुरमें स्कूल खोला है। एक तो यों ही मुसलमान प्रजा जमींदारोंको मानना नहीं चाहती, तिसपर लिखना-पढ़ना सीख गई तब तो फिर हम लोगोंका जमींदारी रखना और न रखना बिलकुल बराबर हो जायगा। यह बात मैं अभीसे कहे रखता हूँ।

रमा—अच्छा बड़े भइया, यदि धन-सम्पत्ति और जमींदारी नष्ट हो जायगी, तो उससे स्वयं रमेश भइयाकी भी तो कम हानि न होगी?

वेणी—(कुछ सोचकर) हाँ। लेकिन रमा, तुम नहीं जानतीं कि ऐसे मामलोंमें कोई अपनी हानिका विचार ही नहीं करता। हम दोनोंके परेशान होनेसे ही वह प्रसन्न होगा। देख नहीं रही हो कि जबसे यहाँ आया है, तबसे किस तरह रुपये उड़ा रहा है? छोटी जातिके लोगोंमें 'छोटे बाबू छोटे बाबू' की धूम मच गई है। लेकिन यह बहुत दिनोंतक नहीं चल सकेगा। यह जो तुमने उसे पुलिसकी नजरपर चढ़ा दिया है बहन, इसीसे उसका अन्त हो जायगा।

रमा—क्या रमेश भइयाको इस बातका पता चल गया है कि मैंने रिपोर्ट लिखाई थी?

वेणी—मुझे ठीक तो नहीं मालूम, लेकिन उसे इसका पता तो जरूर ही लग जायगा। भज्जूवाले मामलेमें आखिर सब बातें खुलेंगी या नहीं?

रमा—(कुछ देर तक चुप रहकर) तो क्यों बड़े भइया, आज-कल सब जगह सब लोगोंके मुँहसे उन्हींका नाम सुनाई देता है?

वेणी—हाँ, एक तरहसे यह ठीक ही है। लेकिन रमा, मैं भी उसे सहजमें नहीं छोड़ूँगा। कोई स्वप्नमें भी इस बातका खयाल न करे कि वह तो लिखा पढ़ाकर सारी प्रजाको बिगाड़ दे और मैं जमींदार होकर चुपचाप बैठा हुआ सब सहता रहूँ। यह साला भैरव आचार्य भजुआकी तरफसे गवाही देकर अब अपनी लड़कीका ब्याह कैसे करता है, सो भी देखना है।

रमा— बड़े भइया, आप कहते क्या हैं?

वेणी—क्या एक बार हिला डुलाकर न देखना होगा? वह मेरे मुकाबलेमें अदालतमें खड़ा होकर गवाही देगा, और फिर बाल-बच्चोंको लेकर इस गाँवमें रहेगा इसकी खबर मुझे न लेनी होगी? और यह आचार्य तो झींगा मछली है। बड़े बड़े रोहू मच्छ भी तो हैं। अब देखना है कि गोविन्द चाचा क्या कहते

है। यहाँ डकैतियाँ तो होती ही रहती हैं। अगर इस बार नौकरको जेल भेजवा सका, तो फिर मालिकको भेजनेमें भी ज्यादा जोर न लगाना पड़ेगा।

रमा—(बहुत ही विस्मयसे वेणीके मुँहकी ओर देखकर) कहते क्या हो बड़े भइया, तुम रमेश भइयाको जेल भेजोगे ?

वेणी—क्यों ? क्या वह कोई पीर-पैगम्बर है ? हाथमें पाकर क्या उसे यों ही छोड़ देना होगा ? तुम कैसी बातें करती हो !

रमा—(कोमल स्वरसे) रमेश भइया अगर जेल चले गये, तो क्या यह हम लोगोंके लिए कलंककी बात न होगी ?

वेणी—क्यों ? कलंक किस बातका ?

रमा—हैं तो वे हम ही लोगोंके आत्मीय। अगर हम लोग न बचावेंगे तो सब लोग हमपर ही न थूकेंगे ?

वेणी—जो जैसा काम करेगा, वह वैसा फल भोगेगा, इसमें हम लोगोंका क्या ?

रमा—रमेश भइया कोई चोरी-डकैती तो करते नहीं फिरते हैं। बल्कि यह बात तो किसीसे छिपी नहीं है कि दूसरोंकी भलाईके लिए वह अपना ही सर्वस्व लगा रहे हैं। उसके बाद हम लोगोंको भी तो गाँवमें मुँह दिखलाना होगा ?

वेणी—बहन, आखिर तुम्हें हो क्या गया है ?

रमा—गाँवके लोग चाहे मारे डरके हम लोगोंके मुँहपर कुछ न कहें, फिर भी पीठ पीछे तो कहेंगे ही। तुम कहोगे कि पीठ पीछे तो लोग राजाकी माको भी डाइन कहा करते हैं। लेकिन भगवान भी तो हैं ? अगर निरापराधको झूठ-मूठ दंड दिलाया, तो भगवान तो किसी तरह नहीं छोड़ेंगे !

वेणी—हायरी किस्मत ! अरे वह लौंडा देवी-देवता या भगवान कुछ मानता भी है ? शिवजीका मन्दिर गिरता जा रहा है। उसकी मरम्मत करानेके लिए जब उसके पास आदमी भेजा, तब उसने उसे यह कहकर घरसे निकाल दिया कि जिन लोगोंने तुम्हें मेरे पास भेजा है, उनसे जाकर कह दो कि व्यर्थके कामोंमें खर्च करनेके लिए मेरे पास रुपये नहीं हैं। सुनो उसकी बात ! यह तो हुआ व्यर्थका खर्च, और कामका खर्च है छोटी जातके लोगोंके लिए स्कूल खोलना ! फिर ब्राह्मणका लड़का होकर भी वह सन्ध्या पूजा आदि कुछ भी नहीं करता है और सुनता हूँ कि मुसलमानोंतकके हाथका पानी पीता है ! बहन, उसने अँग्रेजीके चार पन्ने पढ़ लिये हैं, अब क्या उसका कोई धरम-करम रह गया है

जरा भी नहीं । दड उसका गया कहाँ है? सब लोग एक दिन देखेंगे कि उसका सारा दंड जमा किया हुआ रक्खा था।

[रमा चुप रहती है।]

वेणी—अब मैं जाता हूँ। समय मिला तो फिर एक बार तुमसे भेंट करूँगा। बाहर शायद गोविन्द चाचा आकर बैठे होंगे।

रमा—मैं भी जाती हूँ बड़े भइया।　　　　(दोनोंका प्रस्थान।)

[रमेशका प्रवेश]

रमेश—राधा, राधा!

[दासीका प्रवेश]

राधा—क्या है छोटे बाबू?

रमेश—ताईजी पूजा करके आ गईं? उस समय मैं उनसे एक बात कहना भूल गया था।

राधा—नहीं, अभी नहीं आईं। बुला दूँ?

रमेश—नहीं नहीं, रहने दो। उनसे कह देना कि मैं तीसरे पहर आऊँगा।

राधा—अच्छा।

[जल्दीसे गोपालका प्रवेश]

रमेश—आप यहाँ कैसे?

गोपाल—छोटे बाबू, राह देखनेका समय नहीं है। मैं आपको चारों तरफ ढूँढ़ता फिर रहा हूँ। सुना आपने भैरव आचार्यका हाल? कुछ सुना कि उसने हम लोगोंका कैसा सत्यानाश किया है?

रमेश—कहा, नहीं तो!

गोपाल—जब मालिक स्वर्ग सिधारे, तब शोक और दुःखमें सोचा कि और नहीं, अब शान्त रहूँगा। लेकिन नहीं होने दिया। किन्तु छोटे बाबू, अब आप मुझे नहीं रोक सकेंगे। आचार्यको मैं उसकी करनीका फल जरूर चखाऊँगा, जरूर चखाऊँगा। इसका बदला उससे लूँगा, लूँगा और लूँगा! मैं आज ही सदर जाता हूँ।

रमेश—गुमाश्ताजी, बात क्या है? आखिर आचार्यने क्या किया है जो आप जैसे शान्त आदमी इतने उत्तेजित हो गये हैं?

गोपाल—आप पूछते हैं कि उसने क्या किया है?—नमक-हराम शैतान

कहींका ! उसी समय मेरे मनमें आया था कि इसकी जमीन-जायदाद नीलाम होती है तो होने दो; हम लोग इस मामलेमें हाथ नहीं डालेंगे। लेकिन उसी समय डरा कि शायद स्वर्गमें बड़े मालिक दुखी होंगे। उनका स्वभाव तो जानता हूँ, इसी-लिए आपको भी मना नहीं कर सका।

रमेश—लेकिन गुमाश्ताजी, फिर भी तो मै कुछ नहीं समझा ?

गोपाल—उस दिन मैं आपकी आज्ञाके अनुसार सदरमें जाकर उसकी डिगरीके रुपये जमा करके मुकदमेका सब इन्तजाम ठीक कर आया; और आज अभी अभी खबर मिली है कि परसों भैरव आचार्यने स्वय जाकर अदालतमें दरख्वास्त दे दी और वह मुकदमा उठ लिया। देना उसने मजूर कर लिया।

रमेश—इसका मतलब ?

गोपाल—इसका मतलब यह कि हम लोगोंने जो उतने रुपये जमा किये थे, वे सब गये। हम लोगोंके माथेपर खप्पर फोड़ कर अब तीनों आदमी हिस्सा बाँटकर खायँगे। गोविन्द गागुली, बड़े बाबू और वह खुद। आप सुन नहीं रहे हैं कि सबेरेसे ही आचार्यके दरवाजेपर रोशन-चौकीकी सहनाई बज रही है ? धूम धामसे नातीका अन्न-प्राशन होगा। उन्हीं रुपयोंसे देश-भरके ब्राह्मण फलाहार करेंगे। फिर मजा यह कि आपके लिए कोई स्थान नहीं है,—स्थान है गोविन्द गागुलीके लिए। आपको कर दिया है उन लोगोंने जातिसे बाहर।

रमेश—भैरव आचार्य ? यह सब वह कर सका ?

गोपाल—कर क्यों नहीं सकेगा ? अब तो केवल यही जानना बाकी है कि गाँव-देहातके आदमी कर क्या नहीं सकते। अच्छा, अब मैं जाता हूँ।

रमेश—जाइए। मै तो सिर्फ यह सोच रहा हूँ कि महापातकका प्रायश्चित्त कैसे होगा ?

गोपाल—मेरी गवाही है, अदालत खुली हुई है। छोटे बाबू, मै उसे सहजमे नहीं छोड़ूँगा।

(प्रस्थान)

रमेश—नहीं जानता कि कानून क्या कहता है। यह भी नहीं जानता कि कृतघ्नताका कोई दण्ड अदालतमें मिलता है या नहीं। किन्तु वह रहने दो। आज मैं स्वय अपने ऊपर यह भार लेता हूँ। केवल सहते जाना ही संसारमें परम धर्म नहीं है। (प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

[भैरव आचार्यके मकानका बाहरी भाग। दौहित्रका अन्न-प्राशन है, इसलिए बाहर दरवाजेपर मंगल-घट स्थापित हैं। आमके पत्तोंकी बन्दनवार बाहर टाँग दी गई है। आँगनमें एक ओर रोशन-चौकी बजानेवालोंका दल बैठा हुआ है। सामने बरामदेमें गोविंद गांगुली और वेणी घोषाल आदि बैठे हैं। कोई हँस रहा है, कोई तम्बाकू पी रहा है। एक वैष्णव और उसकी वैष्णवी दोनों मिलकर कीर्त्तन कर रहे हैं और सब लोग आनन्दपूर्वक सुन रहे हैं। गीत समाप्त होनेपर दीनू भट्टाचार्य हुक्का रखकर बाहर जा रहे हैं। इतनेमें ही रमेश वहाँ आ पहुँचते हैं। उन्हें देखनेसे ही पता चल जाता है कि वे बहुत ही उत्तेजित हैं। उनके अचानक आ पहुँचनेसे सभी लोग कुछ घबरा-से जाते हैं।]

रमेश—आचार्यजी कहाँ हैं?

दीनू—(पास पहुँचकर) चलो भइया, चलो, घर लौट चलो। तुमने भैरव आचार्यका जो उपकार किया है, वह उसका बाप भी न करता। लेकिन कोई उपाय भी तो नहीं है। सभी लोगोंको बाल-बच्चोंके साथ घर-गृहस्थी चलानी पड़ती है। अगर वह तुम्हें निमन्त्रण देने जाता तो,—समझ गये न भइया, हाँ।—इसमें भैरवको भी अधिक दोष नहीं दिया जा सकता। तुम लोग ठहरे आज-कलके शहरके लड़के। तुम लोग जात-पाँत तो मानते ही नहीं हो। इसीलिए—समझ गये न भइया! दो दिन बाद उसकी छोटी लड़कीका ब्याह होगा। वह भी बारह बरसकी हो गई है। उसे भी तो आखिर पार करना ही होगा।—हम लोगोंके समाजका हाल तो जानते ही हो भइया—

रमेश—जी हाँ, मैंने सब समझ लिया है। आप बतलाइए कि वह है कहाँ?

दीनू—है, है, घरमें ही है। लेकिन मैं उस ब्राह्मणको भी कैसे दोष दूँ? (सब लोगोंकी ओर देखकर) हम बड़े-बूढ़ोंको परलोकका भी तो आखिर कुछ भय—

रमेश—हाँ, हाँ, सो तो ठीक है। लेकिन भैरव कहाँ है?

[भैरवका प्रवेश।]

भैरव—(विनयपूर्वक वेणी बाबूसे) देखिए बड़े बाबू, आप लोगोंको पीछे कष्ट हो—

[अचानक रमेशको सामने देखकर वह वज्राहतकी तरह स्तब्ध हो जाता है।]

रमेश—(जल्दीसे आगे बढ़कर और जोरसे हाथ पकड़कर) ऐसा क्यों किया? आज मैं—

भैरव—बड़े बाबू, गोविन्द गाँगुलीजी, देखिए न एक बार—

रमेश—(जोरसे झटका देकर) बड़े बाबू और गोविन्द,—आज मैं सभीको दिखा दूँगा! बोलो क्यों यह काम किया?

[वेणी आदि सब जल्दीसे भाग जाते हैं।]

भैरव—(रोकर) अरे लक्ष्मी, जल्दी जाकर पुलिसमें खबर कर! अरे मार डाला रे—

रमेश—चुप। बतलाओ किस लिए यह काम किया?

भैरव—अरे बाप रे! मार डाला रे!

रमेश—मार ही डालूँगा। आज तुम्हारा खून कर डालूँगा, तभी घर जाऊँगा।

[यह कहकर बार बार झटके देने लगते हैं। लक्ष्मी भी आकर जोर जोरसे रोने लगती है। इतनेमें बहुत-से लोग जमा होकर चारों ओरसे ताकने-झाँकने लगते हैं।]

[तेजीसे रमाका प्रवेश]

रमा—(रमेशका हाथ पकड़कर) बस, हो गया। अब छोड़ दो।

रमेश—क्यों भला?

रमा—तुम इस आदमीपर हाथ छोड़ोगे?

रमेश—आज मैं इसे किसी तरह न छोड़ूँगा।

रमा—(जोरसे हाथ छुड़ाकर) इतने लोगोंके बीचमें तुम्हें तो लज्जा नहीं आती, लेकिन मैं तो मारे लज्जाके मरी जाती हूँ रमेश भइया। जाओ, घर जाओ।

रमेश—(थोड़ी देर तक विह्वल दृष्टिसे उसकी ओर देखते रहकर) अच्छा। घर ही जाता हूँ।

[रमेश धीरे धीरे वहाँसे चले जाते हैं। उनके जानेके बाद वेणी और गोविन्द आदि सभी आ पहुँचते हैं। भैरव जमीनपर बैठकर और दोनों घुटनोंके बीचमें मुँह छिपाकर रोने लगता है।]

गोवि०—घरपर चढ़ आकर अधमरा कर गया। अब पहले यह राय दो कि इसका क्या बन्दोबस्त होना चाहिए?

वेणी—मैं भी तो यही कहता हूँ।

रमा—लेकिन बड़े भइया, इस तरफका दोष भी तो कुछ कम नहीं है ? और फिर ऐसा हुआ ही क्या है जिसके लिए कोई तूमार खड़ा किया जाय ?

वेणी—कहती क्या हो रमा, यह क्या कोई मामूली बात हुई है ? हम सब लोग न होते तो वह इनका खून ही कर डालता !

रमा—करना चाहते तो हम लोग रोक भी न सकते बड़े भइया !

लक्ष्मी—तुम तो उनकी तरफसे बोलोगी ही रमा बहन ! तुम्हारे घरमें घुसकर अगर कोई तुम्हारे बापको इस तरह मार डालता, तो तुम क्या करतीं ?

रमा—लक्ष्मी, मेरे बापमें और तुम्हारे बापमें बहुत फर्क है । यह तुलना मत करो । मैं किसीकी तरफसे बात नहीं कहती, भलेके लिए ही कहती हूँ ।

लक्ष्मी—ठीक है ! उसकी तरफसे झगड़ा करनेमें तुम्हें लज्जा नहीं आती ? बड़े आदमीकी लड़की हो, इस डरसे कोई कुछ कहता नहीं है । नहीं तो कौन ऐसा है जिसने नहीं सुना है ? तुम हो जो मुँह दिखलाती हो, और कोई होती तो गलेमें फाँसी लगाकर मर जाती !

वेणी—(लक्ष्मीसे) लक्ष्मी, तू चुप रह न ! तुझे इन सब सब बातोंसे क्या मतलब ?

लक्ष्मी—मतलब क्यों नहीं है ? जिसके लिए बाबूजीको इतना दुःख उठाना पड़ा, उन्हींका पक्ष लेकर ये लड़ेंगीं ? अगर आज बाबूजी मर जाते तो ?

रमा—(लक्ष्मीसे) लक्ष्मी, उनके जैसे आदमीके हाथसे मरना भी बहुत बड़े सौभाग्यकी बात है । आज यदि मर जाते तो तुम्हारे बाप स्वर्ग जाते ।

लक्ष्मी—शायद इसीलिए, रमा बहन, तुम भी मरी हो !

रमा—(थोड़ी देर चुपचाप उसके मुँहकी तरफ देखते रहकर मुँह फेर लेती है ।) किन्तु बात क्या है तुम ही बतलाओ न बड़े भइया !

वेणी—मै कैसे जानूँ बहन, लोग न जाने कितनी बातें कहा करते हैं,— उन सबपर ध्यान देनेसे तो काम नहीं चलता ।

रमा—लोग क्या कहते हैं ?

वेणी—कहते हैं, कहा करें । लोगोंके कहनेसे देहपर फफोले नहीं पड़ते । कहने दो न ।

रमा—तुम्हारी देहपर तो शायद किसीसे भी फफोले नहीं पड़ते, लेकिन सब

लोगोंकी देहपर तो गैंडेका चमड़ा नहीं है। लेकिन लोगोंसे ये बातें कहलाता कौन है? तुम।

वेणी—मैं!

रमा—तुम्हारे सिवा और कोई नहीं। दुनियामें कोई ऐसा बुरा काम नहीं है, जो तुमसे बचा हो। जाल, फरेब, चोरी, घरमें आग लगाना सभी कुछ तो हो चुका है। फिर यही क्यों बाकी रह जाय? तुममें यह समझनेकी शक्ति तो है नहीं कि स्त्रीके लिए इससे बढ़कर सर्वनाशकी और कोई बात नहीं हो सकती। लेकिन मैं पूछती हूँ कि आखिर किस लिए तुम यह शत्रुता करते फिरते हो? इस बदनामीके फैलानेमें तुम्हारा क्या लाभ है?

वेणी—मेरा क्या लाभ होगा! अगर लोग तुम्हें रातको रमेशके घरसे निकलते हुए देखते हैं, तो इसमें मैं क्या कर सकता हूँ?

रमा—इतने लोगोंके सामने मैं और सब बातें नहीं कहना चाहती, लेकिन बड़े भइया, तुम यह मत समझना कि तुम्हारे मनका भाव मैं नहीं समझती। तुम अच्छी तरह समझ रक्खो कि मैं रमा हूँ। अगर मैं मरूँगी तो तुम्हें भी जीता नहीं छोड़ जाऊँगी।

(जल्दीसे प्रस्थान)

गोवि०—बड़े बाबू, यह हो क्या गया? तुम्हें भी आँखें दिखला गई? औरत होकर? जीवनमें आँखोंसे यह भी देखना पड़ेगा?

वेणी—(अपना ललाट छूकर) चाचा, इसमें और किसीका दोष नहीं है; दोष है केवल इसका। यह कलि-काल है और इसीका नाम काल-माहात्म्य है। आज तक सिवा भलाईके कभी किसीकी कोई बुराई नहीं की, किसीकी बुराईका विचार भी मैं मनमें नहीं ला सकता। संसारमें मेरी यह दशा नहीं होगी तो और किसकी होगी? विद्यासागरका क्या हुआ था? उनका हाल तो सुना है?

गोवि०—क्यों, सुना क्यों नहीं है!

वेणी—बस बिलकुल वही बात है। दोष और किसको दूँ? (भैरवकी ओर संकेत करके) अगर इनकी रक्षा करने न जाता तो कोई बात ही न होती। लेकिन प्राण रहते मुझसे यह हो नहीं सकता!

तीसरा दृश्य

[स्थान—निर्जन गाँवका रास्ता । रमेशका जल्दीसे प्रवेश । रमा आड़मेंसे पुकारती है—रमेश भइया ? और तुरन्त ही सामने आकर खड़ी हो जाती है ।]

रमेश—रमा ? इतनी दूर इस सुनसान रास्तेमें तुम ?

रमा—मैं जानती हूँ कि पीरपुरके स्कूलका काम खतम करके तुम रोज इसी रास्तेसे जाया करते हो ।

रमेश—हाँ जाता तो हूँ । लेकिन तुम आई क्यों ?

रमा—सुना था कि यहाँ तुम्हारा शरीर अच्छा नहीं रहता । अब कैसी तबीयत है ?

रमेश—अच्छी नहीं है । रोज रातको ऐसा मालूम होता है कि बुखार हो आया है ।

रमा—तब तो कुछ दिनोंके लिए बाहर घूम आओ तो अच्छा हो !

रमेश—(हँसकर) यह तो मैं भी समझता हूँ लेकिन जाऊँ किस तरह ?

रमा—हँसते हो ? कहोगे कि हमें बहुतसे काम हैं । लेकिन ऐसा कौन-सा काम है जो अपने शरीरसे भी बढ़कर हो ?

रमेश—मैं यह नहीं कहता कि अपना शरीर बहुत छोटी चीज है । लेकिन आदमीको ऐसे काम भी होते हैं जो शरीरसे भी बढ़कर हैं । पर रमा, यह तो तुम समझोगी नहीं ।

रमा—मैं समझना भी नहीं चाहती । लेकिन तुम्हें और कहीं जाना ही होगा । गुमाश्ताजीसे कह जाना, मैं उनका सब काम-काज देखती रहूँगी ।

रमेश—मेरा काम-काज तुम देखोगी ?

रमा—क्यों, नहीं देख सकूँगी ?

रमेश—देख तो सकोगी ! शायद मेरी अपेक्षा भी अच्छी तरह देख सकोगी। लेकिन इसकी जरूरत नहीं है । मैं तुम्हारा विश्वास कैसे करूँगा ?

रमा—रमेश भइया, और लोग विश्वास नहीं कर सकते, लेकिन तुम कर सकोगे । अगर तुम न कर सकोगे तो संसारसे विश्वास करनेकी बात ही उठ जायगी । तुम अपना यह भार मुझपर छोड़ जाओ ।

रमेश—(थोड़ी देर चुपचाप उसके मुँहकी ओर देखकर) अच्छा, सोचूँगा।

रमा—लेकिन सोचने-समझनेका तो समय है नहीं। आज ही तुम्हें यहाँसे कहीं और चले जाना होगा। नहीं जाओगे तो—

रमेश—(फिर उसके मुँहकी ओर टक लगाकर देखते हुए) तुम्हारी बात-चीतके ढंगसे मालूम होता है कि अगर न जाऊँगा तो विपत्ति आनेकी संभावना है। अच्छा, अगर मै चला ही जाऊँ तो इसमे तुम्हारा क्या लाभ है ? मुझे विपत्तिमें डालनेके लिए स्वयं तुमने भी तो कोई कम चेष्टा नहीं की है जो आज और एक विपत्तिसे सचेत करनेके लिए आई हो। वे सब घटनायें इतनी पुरानी नहीं हो गई हैं कि तुम्हें याद न हों। बल्कि मुझे साफ साफ बतला दो कि मेरे चले जानेसे स्वय तुम्हें क्या फायदा होगा,—तो शायद तुम्हारे लिए मैं राजी भी हो जाऊँ।

[इस कठोर आघातसे रमाके चेहरेका रंग बदल जाता है; लेकिन फिर भी वह अपने आपको सँभाल लेती है।]

रमा—अच्छा, अब मैं साफ साफ ही बतलाती हूँ। तुम्हारे चले जानेसे मेरा लाभ तो कुछ भी नहीं, लेकिन न जानेसे हानि बहुत होगी। मुझे गवाही देनी पड़ेगी।

रमेश—बस यही ? सिर्फ इतनी ही बात ? लेकिन अगर गवाही न दो तो ?

रमा—गवाही न दूँ तो महामायाकी पूजामें मेरे यहाँ कोई न आवेगा, मेरे यतीन्द्रके जनेऊमें कोई भोजन न करेगा, व्रत-उपवास, धर्म-कर्म—नहीं रमेश भइया, तुम चले जाओ, मै तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि चले जाओ। यहाँ रहकर मुझे सब तरहसे चौपट मत करो। तुम जाओ, इस देशसे चले जाओ।

रमेश—(कुछ देर तक चुप रहकर) अच्छा, मैं जाऊँगा। अपने शुरू किये हुए काम बिना पूरा किये ही चला जाऊँगा। लेकिन मै स्वयं अपने आपको क्या उत्तर दूँगा ?

रमा—उत्तर नहीं है। अगर और कोई होता तो उत्तरकी कमी नहीं थी; लेकिन रमेश भइया, एक बहुत ही क्षुद्र स्त्रीकी अखंड स्वार्थ-परताका उत्तर तुम कहाँ खोज पाओगे ? तुम्हें निरुत्तर ही जाना होगा।

रमेश—अच्छी बात है, ऐसा ही होगा। लेकिन आज मै नहीं जा सकता।

रमा—सचमुच ही नहीं जा सकते ?

रमेश—नहीं। तुम्हारे साथ कौन आया है, उसे बुलाओ।

रमा—मेरे साथ कोई नहीं है। मै अकेली ही आई हूँ।

रमेश—अकेली आई हो? यह कैसी बात है? रानी, अकेली किस साहससे आई?

रमा—साहस यही था कि मैं यह निश्चयपूर्वक जानती थी कि इस रास्तेमें तुमसे भेंट होगी। तब फिर मुझे किस बातका डर?

रमेश—यह अच्छा नहीं किया रमा। कमसे कम अपनी दासीको साथ ले आना चाहिए था। इस सुनसान रास्तेमें तुम्हें मुझसे भी तो डरना उचित है?

रमा—तुमसे? मैं तुमसे डरूँगी?

रमेश—आखिर नहीं क्यों डरोगी?

रमा—(सिर हिलाकर) नहीं, किसी तरह नहीं। रमेश भइया, तुम मुझे और चाहे जो उपदेश दो, उसे सुन लूँगी। लेकिन तुमसे डरनेका डर मुझे नहीं दिखलाना।

रमेश—मुझपर तुम्हारी इतनी अवहेला है?

रमा—हाँ, इतनी अवहेला है। अभी कहते थे कि दासीको साथ न लाकर अच्छा नहीं किया। लेकिन मैं यह भी तो सुनूँ कि किस लिए लाती? सोचा होगा कि तुम्हारे हाथोंसे बचनेके लिए मैं दासीकी शरण लूँगी? तो क्या वह तुम्हारे निकट रमाकी अपेक्षा बड़ी हो जायगी?

[रमेश चुपचाप उसके मुँहकी ओर देखते रहते हैं।]

रमा—सबेरेकी बात याद नहीं है? वहाँ आदमियोंकी कमी नहीं थी। लेकिन तुम्हारी उस मूर्तिको देखकर जब सब लोग भाग गये, तब भैरव आचार्यकी रक्षा किसने की? इसी रमाने। उस समय यदि किसी दासी या नौकरकी आवश्यकता नहीं हुई, तो इस समय भी नहीं होगी। बल्कि आजसे तुम्हीं रमासे डरा करो। और आज मैं यही कहनेके लिए आई थी।

रमेश—तब तो रमा, तुम व्यर्थ ही आई। सोचा था कि केवल अपनी भलाईके लिए ही मुझसे चले जानेके लिए कह रही हो। लेकिन जब ऐसा नहीं है, तब सचेत करनेका कोई प्रयोजन मुझे नहीं दिखाई देता।

रमा—रमेश भइया, क्या संसारमें सभी प्रयोजन आँखोंसे दिखाई देते हैं?

रमेश—जो नहीं दिखाई देता उसे मैं स्वीकार नहीं करता। मैं जाता हूँ।

(प्रस्थान)

रमा—(अकस्मात् रोकर) जो अन्धा हो, उसे मैं किस तरह दिखलाऊँ!

चौथा अंक

पहला दृश्य

[स्थान—रमाके पूजावाले दालानका एक अंश। दुर्गाकी प्रतिमा तो स्पष्ट नहीं दिखाई देती, लेकिन पूजाकी सारी सामग्री सामने रक्खी है। समय—तीसरा पहर। इस समयका पूजाका कार्य समाप्त हो चुका है। एक ओर रमा स्थिर भावसे बैठी है। इतनेमें घरका कारिन्दा आता है।]

कारिन्दा—बिटिया, समय तो जा रहा है, लेकिन शूद्रोंमेंसे तो कोई आया नहीं। मैं जरा चक्कर लगाकर देख आऊँ?

रमा—कोई नहीं आया?

कारि०—नहीं।

[हाथमें हुक्का लिये हुए वेणी घोपालका प्रवेश।]

वेणी—हिश्! इतना खाने-पीनेका सामान बरबाद करनेके लिए बैठे हैं छोटी जातिके लोग! इनका इतना हौसला! मैं इन सालोंको इसका मजा चखाऊँगा और जरूर चखाऊँगा। अगर इनका घर-बार न उजड़वा दूँ तो मैं—

[वेणीके मुँहकी ओर देखकर रमा सिर्फ जरा हँस देती है, कुछ कहती नहीं।]

वेणी—नहीं नहीं, रमा, यह हँसीकी बात नहीं है। बड़े भारी सर्वनाशकी बात है। एक बार जब मुझे मालूम हो जायगा कि इसकी जड़में कौन है, तो उसे यों उखाड़ फेकूँगा। ये हरामजादे साले यह नहीं समझते कि जिसके जोरपर इतना नाच रहे हैं, वे रमेश बाबू खुद इस समय जेलमें घानी चलाते हुए मरे जा रहे हैं। फिर तुमको मारनेमें कितनी-सी देर लगेगी? मैंने साफ साबित कर दिया कि वह भैरव आचार्यको मारनेके लिए घरपर चढ़ आया था और उसके हाथमें इतनी बड़ी भुजाली थी। फिर कोई साला तो नहीं रोक सका? अरे मैं चाहूँ तो रातको दिन और दिनको रात करके दिखला दूँ! अच्छा और थोड़ी देर तक देखता हूँ। उसके बाद, शास्त्रमें कहा है, यथा धर्मः तथा जयः। शूद्र होकर ब्राह्मणके धर्म-कर्ममें इस तरहकी शरारत! अच्छा— (प्रस्थान)

[विश्वेश्वरीका प्रवेश ।]

विश्वेश्वरी—रमा !

रमा—क्यों ताईजी ?

विश्वे०—इस तरह चुपचाप बैठी हो बेटी ! देखकर कौन कहेगा कि आदमी है ! ठीक जैसे किसीने मिट्टीकी मूरत गढ़ रक्खी है। (धीरे धीरे पास पहुँचकर और बैठकर) न वह हँसी है और न वह उल्लास है। मानो कहीं बहुत दूर चले गये हैं ।

रमा—(कुछ हँसकर) इतनी देरतक घरके अन्दर क्या कर रही थीं ताईजी ?

विश्वे०—तुम्हारे यज्ञवाले घरमें तो काम-काज कम नहीं है बेटी, खाने-पीनेकी चीजोंका तो तुमने पहाड़ लगा रक्खा है ।

रमा—लेकिन अबकी बार बिलकुल व्यर्थ हो रहा है। जान पड़ता है, एक भी किसान मेरे घर माँका प्रसाद लेनेके लिए न आवेगा। लेकिन और बरसोंका हाल तो तुम जानती हो ताईजी, इसी सप्तमीके दिन प्रजाकी भीड़को चीरकर घरके अन्दर आना मुश्किल होता था ।

विश्वे०—अब भी समय नहीं बीता है रमा। शायद सन्ध्याके बाद ही सब लोग आवें ।

रमा—नहीं ताईजी, नहीं आवेंगे ।

विश्वे०—सभी यही बात कह रहे हैं। वेणी और गोविन्द क्रोधमें भरे हुए चारों तरफ घूम रहे हैं। अन्दर तुम्हारी मौसीके गाली-गलौजके मारे कान नहीं दिये जाते। सिर्फ तुम्हारे मुँहसे ही मैं कोई शिकायत नहीं सुन रही हूँ। न तो वह क्रोध ही है और न क्षोभ। तुम्हारी आँखोंकी तरफ देखनेसे तो मालूम होता है कि उनके नीचे रुलाईका समुद्र दबा हुआ है। बेटी, तुम किस तरह इतनी बदल गई ?

रमा—ताईजी, मैं क्रोध किसपर करूँ ? प्रजाके ऊपर ? क्या केवल गरीब होनेके कारण ही उन्हें अपनी मान-मर्यादाका बोध नहीं है ? वे मेरी जैसी पापिष्ठाका अन्न क्यों ग्रहण करने लगे ?

विश्वे०—बेटी, भला तुम्हें पापिष्ठा कौन कह सकता है ?

रमा—कहे भी तो अनुचित न होगा। वे लोग जानते हैं कि हम लोग उनको नहीं चाहते, हम लोग उनके कोई अपने नहीं हैं। ताईजी, हमने

उन्हें आदरपूर्वक तो बुलाया नहीं, जोरसे हुकम-भर दे दिया है कि हमारे यहाँ खा जाओ। फिर भी उनके न आनेसे हम लोग मारे गुस्सेके पागल हुए जाते हैं। लेकिन उन लोगोंको आदरका स्वाद मिल गया है। रमेश भइयासे उन लोगोंको मालूम हो गया है कि प्रेम किसे कहते हैं। उन लोगोंके उसी बन्धुको जब हम लोगोंने झूठे मुकदमेमें फँसाकर और झूठी गवाहियाँ देकर जेलमें बन्द करा दिया, तब ताईजी, वे यह दुःख भला किस तरह भूल सकते हैं?

विश्वे०—लेकिन बेटी, तुमने तो झूठी गवाही दी नहीं?

रमा—मैंने झूठी गवाही नहीं दी? उन्हें इस बातका पूरा विश्वास था कि और जो चाहे झूठ बोले, मगर मैं कभी झूठ न बोल सकूँगी। लेकिन बोल तो सकी! रुकी तो नहीं! आचार्यके कितने बड़े अपराध और कितनी बड़ी कृतघ्नतासे रमेश भइया आपेसे बाहर हो गये थे, यह तो मैं जानती हूँ। और यह भी जानती हूँ कि उनके हाथमें एक तिनका तक नहीं था। तो भी अदालतमें खड़े होकर स्मरण भी नहीं कर सकी कि उनके हाथमें छुरी छुरा था या नहीं!

विश्वे०—रमा—

रमा—ताईजी, तुम कहती थीं कि मैं झूठ नहीं बोली। यहाँकी अदालतमें हलफ लेकर झूठ शायद मैंने न बोला हो, लेकिन जिस अदालतमें हलफ नहीं ली जाती, उसके सामने पहुँचकर मैं क्या उत्तर दूँगी? हे भगवान, तुमने मुझे पहले ही क्यों न जानने दिया कि सत्यको छिपानेका इतना बड़ा बोझ होता है?

विश्वे०—लेकिन बेटी, मैं तुमसे कहे देती हूँ कि रमेशको सजा हो गई है, यह तो सत्य है, लेकिन उसका अमगल कभी नहीं होगा।

रमा—अमंगल होगा कैसे ताईजी, जब कि आज सारे अमगलका भार मेरे सिर आ पड़ा है?

विश्वे०—अकेले तुम्हारे ही सिर नहीं आ पड़ा है बेटी, हम सभीने मिलकर उसका हिस्सा बाँट लिया है। असत्याचारी समाजके जिन कायरोंके दलने झूठी बदनामीका डर दिखलाकर तुम्हें छोटा बनाया है, इस पापके भारसे आज उन लोगोंका सिर रास्तेकी धूलमें मिल गया है। मैं वेणीकी माँ हूँ। रमा, आज मेरा सिर भी धूलमें लोट रहा है। उसे मैं कभी न उठा सकूँगी।

रमा—ऐसी बात मत कहो ताईजी। लेकिन मैंने क्या किया था जानती हो? एक जन-शून्य अँधेरे रास्तेमें उनसे अकेलेमें भेट करके समझाया था कि तुम

यहाँसे चले जाओ, रमेश भइया, यहाँ मत रहो, चले जाओ। परन्तु उन्होंने विश्वास नहीं किया और कहा कि मेरे चले जानेसे तुम्हारा क्या लाभ होगा? मेरा लाभ! मैं अचानक मारे व्यथाके मानों पागल हो गई। कहा कि लाभ तो कुछ नहीं है, लेकिन न जानेसे मेरी हानि बहुत बड़ी होगी। मेरे यहाँ महामायाकी पूजामें कोई न आयगा और मेरे यतीन्द्रके जनेऊमें कोई नहीं खायगा। तुम यहाँ रहकर मुझे सब तरफसे बरबाद मत करो। लेकिन इतना बड़ा झूठ मैंने कहाँसे पाया ताईजी? उन्होंने नाराज होकर कहा कि बस यही? इतना ही? तब तो इसके लिए अपना काम छोड़कर मैं किसी तरह न जाऊँगा। इस उपेक्षासे क्षुब्ध होकर मैंने सोचा कि तब हो जाने दो सजा। विश्वास था कि यों ही कुछ मामूली-सा जुरमाना हो जायगा। लेकिन वह सजा इस रूपमें मिलेगी, उनके रोग-शीर्ण मुखकी ओर देखकर भी विचारकको दया नहीं आवेगी और वह उन्हें जेल भेज देगा, यह बात तो मैं बहुत ही बड़े दुःस्वप्नमें भी नहीं सोच सकती थी ताईजी।

विश्वे०—हाँ बेटी, यह मैं जानती हूँ।

रमा—सुना कि अदालतमें वे केवल मेरे ही मुखकी ओर देख रहे थे। उनके गोपाल गुमाश्तेने अपील करनी चाही, लेकिन उन्होंने कह दिया कि नहीं। अगर सारा जीवन जेलमें ही बिताना पड़े, तो वह भी अच्छा, लेकिन अपील करके छूटना अच्छा नहीं। ताईजी, तुम्हीं बतलाओ कि मेरे लिए यह कितना बड़ा दंड है?

विश्वे०—पर अब तो उसकी मियाद भी पूरी होना चाहती है। उसके छूटकर आनेमें अब ज्यादा देर नहीं है।

रमा—उनकी मुक्ति हो जायगी, लेकिन उनकी उस घोर घृणासे इस जीवनमें मेरी तो मुक्ति नहीं होगी?

[वृद्ध सनातन हाजराको लिये हुए वेणीका प्रवेश।]

वेणी—यह हमारी तीन पीढ़ियोंका आसामी है। सामनेसे चला जा रहा था, जब बुलाया तब घरके अन्दर आया! क्यों रे सनातन, इतना अभिमान कबसे हो गया? तुम्हारी गर्दनपर क्या और एक नया सिर निकल आया है?

सनातन—दो सिर किसके धड़पर रहते हैं बड़े बाबू? जब आप जैसोंके ही नहीं रहते, तो फिर हम जैसे गरीबोंके कैसे रहेंगे!

वेणी—क्या कहता है बे हरामजादे ?

सनातन—बड़े बाबू, दो सिर किसीके नहीं रहते, बस यही बात कह रहा हूँ,—और कुछ नहीं।

[गोविन्द गांगुलीका प्रवेश।]

गोवि०—हम लोग तो खाली यही देख रहे हैं कि तुम लोगोंका हौसला कितना बढ़ता जा रहा है! माताका प्रसाद लेनेको भी तुम कोई नहीं आये! भला बतला तो क्यों नहीं आये?

सनातन—(हँसकर) हम लोगोंका हौसला क्या! हमारा जो कुछ करना था सो तो आप कर ही चुके। उसे जाने दीजिए। लेकिन चाहे माताका प्रसाद हो और चाहे जो कुछ हो, अब कोई कैवर्त्त किसी ब्राह्मणके घर नहीं खायगा। हम लोग तो केवल इसीकी चर्चा करते रहते हैं कि धरती-माता इतना बड़ा पाप किस तरह सह रही है! (ठंढी साँस लेकर और रमाकी ओर देखकर) बहन, जरा सावधान रहना। पीरपुरके लड़कोंका दल बिलकुल ही पागल हो उठा है। इसी बीचमें वह बड़े बाबूके मकानके चारों तरफ दो तीन चक्कर लगा गया है। खैरियत यही हुई कि बड़े बाबूको कोई पा नहीं पाया। (वेणीकी ओर देखकर) बड़े बाबू, जरा सँभलकर रहिएगा, रात-बिरात बाहर मत निकलिएगा।

[वेणी कुछ कहना चाहते हैं, लेकिन मारे भयके उनके मुँहसे बात नहीं निकलती।]

रमा—(स्नेहपूर्ण स्वरसे) सनातन, मालूम होता है कि छोटे बाबूके कारण ही तुम सब लोगोंकी इतनी नाराजगी है।

सनातन—बहन, मैं झूठ बोलकर नरकमें नहीं जाऊँगा। ठीक यही बात। फिर भी पीरपुरके लोगोंका गुस्सा सबसे ज्यादा है। वे लोग छोटे बाबूको देवता समझते हैं।

रमा—(आनन्दसे मुख उज्ज्वल हो उठता है) ऐसी बात है सनातन?

वेणी—(सनातनका हाथ पकड़कर) सनातन, तुझे दारोगाजीके सामने चल कर कहना होगा। तू जो माँगेगा वही दूँगा। तू अपनी वह दो बीघा जमीन छुड़ा लेना चाहे तो वह भी छोड़ दूँगा। मैं ठाकुरजीके सामने कसम खाता हूँ। तू इस ब्राह्मणकी बात रख दे।

सनातन—बड़े बाबू, अब वह जमाना चला गया,—अब वे दिन नहीं रह गये। छोटे बाबू सब कुछ उलट पुलट कर गये हैं।

गोवि०—तो फिर तू ब्राह्मणकी बात नहीं मानेगा ?

सनातन—(सिर हिलाकर) नहीं।—गंगुलीजी, कहूँगा तो तुम नाराज हो जाओगे। किन्तु उस दिन पीरपुरवाले नये स्कूलके कमरेमें छोटे बाबूने कहा था कि गलेमें दो-चार सूत डाल लेनेसे ही कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता। और महाराज, मैं कोई आजका तो हूँ नहीं, सब जानता हूँ। जो कुछ तुम सब करते फिरते हो, वह क्या ब्राह्मणोंका काम है ? बहन, मैं तुम्हींसे पूछता हूँ, तुम्हीं कह दो।

[रमा चुपचाप सिर झुका लेती है।]

सनातन—(मनका क्रोध दबाकर) ज्यादातर तो करता है लड़कोंका दल। इन दोनों गाँवोंके जितने छोकरे हैं, वे सब सन्ध्याके बाद मोडलके घर जाकर इकट्ठे होते हैं और साफ साफ कहते फिरते हैं कि अगर जमींदार हैं तो छोटे बाबू, और तो सब चोर और डाकू हैं। इसके सिवाय हम लोग मालगुजारी देंगे और रहेंगे, किसीसे डरेंगे क्यों ? अगर लोग ब्राह्मणोंकी तरह रहें तो ब्राह्मण हैं, और नहीं तो जैसे हम हैं, वैसे ही वह भी हैं।

वेणी—(आतंकसे परिपूर्ण होकर) सनातन, तुम बतला सकते हो कि मुझपर ही उन लोगोंकी इतनी नाराजगी क्यों है ?

सनातन—बड़े बाबू, क्यों नहीं बतला सकता ? आप ही सारे अनर्थोंकी जड़ हैं, यह सभी अच्छी तरह जान गये हैं।

[वेणी मारे भयके चुप हो जाते हैं। अन्दरसे उनका कलेजा धक धक करने लगता है।]

विश्वे०—गांगुलीजी, एक छोटे आदमीके मुँहसे इतनी हिमाकतकी बातें सुनकर भी तुम चुप हो रहे हो ?

[वेणी बाबू तिरछी और गुस्सेसे भरी नजरसे देखकर चुप रह जाते हैं।]

गोवि०—हाँ, तो क्यों रे सनातन, विपिन मोडलके घरपर ही सब लोगोंका जमावड़ा होता है ? तू बतला सकता है कि वहाँ वे सब क्या करते हैं ?

सनातन—क्या करते हैं सो नहीं जानता। लेकिन महाराज, भला चाहते हो तो कोई और बुरी चाल मत सोचना। उन सब छोटे-बड़ोंने मिलकर आपसमें भाईचारा कायम कर लिया है। सब एक-मन और एक-प्राण हैं। छोटे बाबूको

जेल हो जानेसे मारे गुस्सेके बारूद हो रहे हैं। उन लोगोंके बीचमें पहुँचकर चकमक रगड़कर आग मत सुलगाने लग जाना। बस, मैं आप लोगोंको होशियार किये जाता हूँ। (प्रस्थान)

[सनातनके चले जानेपर सब लोग कुछ देर तक चुप रहते हैं।]

वेणी—रमा, सुन लिया सब हाल?

[रमा कुछ हँसती है, कोई उत्तर नहीं देती। उसकी हँसी देखकर वेणीके सारे शरीरमें आग सी लग जाती है।]

वेणी—उस साले भैरवके लिए ही इतना सब बखेड़ा हुआ है। अगर तुम वहाँ न जातीं और उसे न छुड़ातीं, तो यह सब कुछ भी न होता। खाता साला मार; तुम्हारा क्या बिगड़ता था!

[रमा फिर कुछ हँसती है, मगर उत्तर नहीं देती।]

वेणी—रमा, तुम तो हँसोगी ही। तुम औरत ठहरीं, तुम्हें घरसे बाहर तो निकलना नहीं पड़ता। मगर बतलाओ कि हम लोग क्या करें? अगर वे सचमुच ही किसी दिन हमारा सिर फोड़ दें तो क्या हो? औरतोंके साथ काम करनेसे यही तो दशा होती है।

[रमा चकित होकर केवल वेणीके मुखकी ओर देखती रहती है।]

वेणी—गोविन्द चाचा, चुपचाप बैठे रहनेसे कैसे काम चलेगा? मेरे दरबान और नौकरको बुलवा दो न! साथमें दो लालटेनें भी लेते आवें।

गोवि०—आओ चलो, बाहर चलकर बुलवाता हूँ। और फिर डर काहेका है? न होगा तो मैं ही चलकर तुम्हें घर तक पहुँचा जाऊँगा।

(दोनोंका प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

[स्थान—एक रास्ता। जगन्नाथ और नरोत्तमका प्रवेश। जगन्नाथके हाथमें एक बड़ी लाठी है।]

नरोत्तम—बस यही रास्ता है। इधरसे ही होकर जायगा। जग्गू अब भी कहो, हिम्मत करोगे न?

जगन्नाथ—भला हिम्मत कैसे न होगी। सजा भोगनेके लिए राजी होकर ही

तो सजा देनेके लिए निकला हूँ। इसने बहुत दुःख दिया है। दुर्गा मैया, ऐसा करो कि जिसमें आज एक काम-सा काम कर जाऊँ और मेरा हाथ न काँपे।

नरोत्तम—क्यों रे हाथ काँपेगा?

जगन्नाथ—काँप सकता है। बाप-दादोंके समयसे मार खानेका ही अभ्यास पड़ा हुआ है न! इसलिए अगर अन्त तक मेरा हाथ न उठे, तो समझ लेना कि मेरे हाथका ही दोष है, मेरा नहीं।

नरोत्तम—अच्छा, तो फिर लाठी मेरे हाथमें दे दो और तुम दूर खड़े रहो। जरा मैं देखूँ कि क्या कर सकता हूँ।

जगन्नाथ—नरोत्तम, तुम ऐसी बात मत कहो। तुम्हारे बाल-बच्चे हैं, लेकिन मेरे कोई नहीं है। यही मौका है। छोटे बाबू लौट आये तो फिर यह काम नहीं हो सकेगा। वे रोक लेंगे। इसलिए उनके जेलसे निकलनेके पहले ही उनका बदला चुकाकर मैं जेलके अन्दर चला जाऊँगा। तुम घर जाओ।

नरोत्तम—घर नहीं जाऊँगा, तुम्हारे पास ही रहूँगा।

[नरोत्तम कुछ दूर हटकर खड़ा हो जाता है। दूसरी ओरसे वेणी, गोविन्द और दरबानका प्रवेश। दरबानके हाथमें लालटेन है।]

वेणी—(चौंककर) कौन खड़ा है रे?

जगन्नाथ—मैं हूँ जगन्नाथ।

गोवि०—रास्तेमें खड़ा होकर लोगोंको मना कर रहा है जिसमें कोई खाने न जाय! क्यों बे हरामजादे?

जगन्नाथ—गांगुलीजी, गाली मत बकना, कहे देता हूँ!

वेणी—गाली नहीं दूँगा? हरामजादे साले, जानता है, कल ही तेरा घरद्वार उजाड़कर धान बोआ दूँगा?

जगन्नाथ—हाँ, जानता हूँ कि बहुतोंका उजाड़ दिया है। लेकिन आज ऐसा बन्दोबस्त कर जाऊँगा कि फिर न उजाड़ सको।

वेणी०—क्यों बे हरामजादे, कौन-सा बन्दोबस्त करेगा? सुनूँ?

[कुछ आगे बढ़ जाते हैं।]

जगन्नाथ—बस, यही बन्दोबस्त है!

[वेणीके सिरपर जोरसे लठ जमा देता है।]

वेणी—(बैठ जाता है) बाप रे! मर गया!

[गोविन्द और दरबान चिल्लाकर जल्दीसे भाग जाते हैं।]

वेणी—भइया जगन्नाथ, तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, ब्रह्म-हत्या मत करो। दुहाई भइया, मैं तुम्हें दस बीघे जमीन दूँगा।

जगन्नाथ—मुझे तुम्हारी जमीन नहीं चाहिए; वह अपने पास ही रक्खो। मैं ब्रह्म-हत्या भी नहीं करूँगा।

वेणी—जगन्नाथ, आजसे तुम्हारा और मेरा बाप-बेटेका सम्बन्ध हुआ। तुम जो माँगोगे, वही—

जगन्नाथ—मैं कुछ नहीं चाहता। लेकिन बाप बेटेका सम्बन्ध और तुम्हारे साथ ? राम राम ! बड़े बाबू, तुम्हे फिर होशियार किये देता हूँ कि यह मार ही आखिरी मार नहीं है। हम लोगोंने मालिक समझकर और ब्राह्मण समझकर जितना ही सहा है, उतना ही तुम्हारा अत्याचार बढ़ता गया है। अब हम नहीं सहेंगे। देखता हूँ कि तुम लोग सीधे होते हो या नहीं।

(प्रस्थान)

वेणी—बाप रे ! मर गया रे ! सब साले भाग गये रे !

[गोविन्द और दरबानका प्रवेश।]

गोवि०—(हाँफते हुए) भागने क्यों लगा भइया, भागा नहीं था ! आदमियोंको बुलानेके लिए दौड़ा गया था। जानते तो हो कि जगुआ साला कैसा गुंडा है ! सालेपर डकैतीका चार्ज लगाकर पाँच बरसके लिए जेल न भेज दूँ तो मेरा नाम गोविन्द गांगुली नहीं !

दरबान—(हाँफते हुए) अगर हाथमें कोई हथियार रहता !

वेणी—अबे दूर हो साले सामनेसे। मार मारके तख्ता बना दिया—(सिरपर हाथ फेरकर) दैया रे ! कितना खून जा रहा है ! अब मैं नहीं बच सकता। (पड़ जाता है।)

गोवि०—(पकड़कर उठानेकी चेष्टा करते हुए) अरे बच जाओगे, बच जाओगे। मैं खुद तुम्हें कलकत्तेके अस्पतालमें ले चलूँगा। (दरबानसे) अरे जरा पकड़ न साले सत्तूखोर। साला डरके मारे गीदड़की तरह भाग गया।

दरबान—क्या करें बाबूजी, बिना हथियारके—

[दोनों वेणीको उठाकर ले जाते हैं।]

तीसरा दृश्य

[रमाके सोनेका कमरा। बीमार रमा पलगपर लेटी हुई है। सामनेसे सबेरेकी धूप खिड़कीके रास्ते अन्दर आकर जमीनपर पड़ रही है। विश्वेश्वरीका प्रवेश।]

विश्वे०—(रुँधे हुए गलेसे) क्यों बेटी रमा, आज कैसी तबीयत है?

रमा—(कुछ हँसकर) ताईजी, अच्छी हूँ।

विश्वे०—रातको बुखार उतर गया था?

रमा—नहीं। लेकिन मालूम होता है कि जल्दी ही एक दिन उतर जायगा।

विश्वे०—और खाँसी?

रमा—खाँसी तो अभीतक वैसी ही मालूम होती है।

विश्वे०—फिर भी बेटी, कहती हो कि तबीयत अच्छी है!

[रमा चुपचाप हँसती है। विश्वेश्वरी उसके सिरहाने जा बैठती है और सिरपर हाथ फेरने लगती है।]

विश्वे०—बेटी, तुम्हारी यह हँसी देखकर मालूम होता है कि मानो पेड़मेंसे तोड़ा हुआ फूल किसी देवताके पैरोंके पास पड़ा हुआ हँस रहा है! बेटी!

रमा—क्यों ताईजी?

विश्वे०—मैं तो तुम्हारी माँके समान हूँ रमा,—

रमा—ताईजी, माँके समान क्यों, तुम तो मेरी माँ ही हो।

विश्वे०—(झुककर और रमाका मस्तक चूमकर) तो फिर बेटी, सच सच बतला दो, तुम्हें क्या हुआ है?

रमा—ताईजी, बीमार हूँ।

विश्वे०—(रमाके रूखे बालोंपर हाथ फेरती हुई) यह तो बेटी, मैं चमड़ेकी इन आँखोंसे ही देख रही हूँ। अगर ऐसी कोई बात हो जो इनसे न देखी जा सकती हो तो वह भी अपनी माँसे नहीं छिपाना। बेटी, छिपानेसे बीमारी अच्छी नहीं होगी।

रमा—(थोड़ी देरतक चुपचाप खिड़कीके बाहरकी तरफ देखकर) बड़े भइया कैसे ताईजी?

विश्वे०—सिरका घाव भरनेमें तो अभी देर लगेगी, लेकिन अस्पतालसे वह

पाँच-छः दिनमें ही घर आ जायगा।—बेटी, तुम दुःख मत करो। उसे इसकी जरूरत थी। इससे उसका भला ही होगा। शायद तुम सोचती होगी कि मैं माँ होकर अपनी सन्तानपर इतना बड़ा संकट आनेपर ऐसी बात कैसे कह रही हूँ। लेकिन तुमसे सच कहती हूँ कि मैं यह नहीं बतला सकती कि इससे मुझे कष्ट अधिक हुआ है या आनन्द। जो लोग अधर्मसे नहीं डरते और जिन्हें लज्जा नहीं, उन लोगोंको बेटी, अगर प्राणोंका भय इतना अधिक न हो तो यह संसार ही मिट्टीमें मिल जाय। इसीलिए रमा, मेरे मनमें तो बारबार यही बात आती है कि उस खेतिहरके लड़केने वेणीकी जितनी भलाई की है, उतनी भलाई संसारमें उसका कोई आत्मीय बन्धु भी न कर सकता। बेटी, धोनेसे कोयलेकी कालिख नहीं छूटती, उसे तो आगमें जलाना पड़ता है।

रमा—लेकिन ताईजी, पहले तो यह बात नहीं थी। यहाँके खेतिहरोंको किसने इस तरहका कर दिया?

विश्वे०—बेटी, यह क्या तुम खुद ही नहीं समझतीं कि कौन इन लोगोंका इतना हौसला बढ़ा गया है? उन लोगोंने सोचा था कि जैसे भी हो जेलमें बाँध देनेसे सब झगड़ा मिट जायगा। लेकिन यह नहीं सोचा कि जब आग सुलग जाती है, तब यों ही नहीं बुझ जाती। जबरदस्ती बुझा दी जाय तो आसपासकी चीजोंको भी तपा जाती है।

रमा—लेकिन ताईजी, क्या यह अच्छा है?

विश्वे०—बेटी, अच्छा तो है ही। एक ओर तो प्रबलकी अत्याचार करनेकी अखंड लालसा और दूसरी ओर निरुपाय लोगोंकी सहन करनेकी वैसी ही अविच्छिन्न कायरता। इन दोनोंको ही यदि वह खर्व कर दे तो अच्छा ही है। बेटी, वेणीकी अवस्थाका ध्यान करके मैं कभी ठंढी साँस नहीं भरूँगी। बल्कि यही प्रार्थना करूँगी कि मेरा रमेश लौट आकर दीर्घजीवी हो और इसी तरह काम कर सके। रमा, एकलौती सन्तान क्या है, यह केवल माँ ही जानती है। जब खूनसे लथपथ हालतमें लोग वेणीको पालकीमें डालकर अस्पताल ले गये, उस समय मेरी जो दशा हुई थी वह मैं तुम्हें किसी तरह समझा नहीं सकती। लेकिन फिर भी मैं किसीको अभिशाप नहीं दे सकी। बेटी, यह बात तो मैं भूल नहीं सकती कि धर्मका दंड माँका मुँह नहीं देखता रहता।

रमा—ताईजी, मैं तुम्हारे साथ तर्क नहीं करती, लेकिन अगर यही बात

ठीक हो तो फिर रमेश भइया किस पापके कारण यह दुःख भोग रहे हैं ? हम लोगोंने जो जो कार्रवाइयाँ करके उन्हें जेल भेजा है, वे तो किसीसे छिपी नहीं हैं ?

विश्वे०—छिपी नहीं हैं, इसीलिए तो आज वेणी अस्पतालमें है। और तुम्हारा—बेटी, जान रक्खो, कि कोई काम कभी यों ही निष्फल होकर शून्यमें नहीं मिल जाता। उसकी शक्ति कहीं न कहीं जाकर अपना काम करती ही है। लेकिन किस तरह करती है, इसका पता हर समय सबको नहीं लगता; और इसी लिए आज तक इस समस्याकी मीमांसा नहीं हो सकी है कि क्यों एकके पापके लिए दूसरेको प्रायश्चित्त करना पड़ता है। लेकिन रमा, इसमें सन्देह नहीं कि करना अवश्य पड़ता है।

[रमा चुपचाप ठंढी साँस ले लेती है।]

विश्वे०—बेटी, इस घटनासे मेरी भी आँखें खुल गई हैं। सिर्फ किसीकी भलाई करनेकी नीयतसे ही इस संसारमें भलाई नहीं की जा सकती। शुरूकी छोटी बड़ी बहुत-सी सीढ़ियाँ पार करनेका धैर्य होना चाहिए। एक बार रमेश हताश होकर यहाँसे चला जाना चाहता था। उस समय मैंने ही उसे नहीं जाने दिया था। इसीलिए जब मैंने सुना कि वह जेल चला गया है, तब मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मानों मैंने ही उसे जेल भेजा है। उस समय तो जानती नहीं थी कि बाहरसे दौड़े आकर भला करने जानेमें इतनी विडम्बना है! भलाई करनेका काम बहुत कठिन है।

रमा—क्यों ताईजी, कठिन क्यों है ?

विश्वे०—उस समय तो सोचा भी नहीं था कि पहले दस आदमियोंके साथ मिलकर एक होना पड़ता है। वह पहलेसे ही इतना अधिक जोर और इतनी अधिक जीवनी-शक्ति लेकर इतनी अधिक ऊँचाईपर आ खड़ा हुआ कि कोई उस तक पहुँच ही नहीं सका—कोई उसे पा ही नहीं सका। लेकिन अब सोचती हूँ कि उसे नीचे उतारकर भगवानने मंगल ही किया है।

रमा—भगवानने नहीं ताईजी, हम लोगोंने। लेकिन हम लोगोंका अधर्म उन्हें क्यों नीचे उतार लायगा ?

विश्वे०—उतार क्यों नहीं लायगा बेटी ? नहीं तो पाप इतना भयंकर क्यों है ? उपकारके बदलेमें यदि कोई प्रत्युपकार न भी करे, बल्कि उलटे उसके साथ अपकार ही करने लगे, तो भी उससे क्या बनता-बिगड़ता है, अगर मनुष्यकी

कृतघ्नता दाताको नीचे न उतार लावे ? रमा, तुम कहती हो, लेकिन तुम्हारा गाँव रमेशको क्या फिर बिलकुल पहलेकी तरह पावेगा ? तुम लोग साफ देखोगे कि जिन हाथोंसे वह अब तक चार आदमियोंकी भलाई करता फिरता था, उसके वही हाथ भैरव आचार्यने,—और फिर अकेले भैरवने ही क्यों, तुम सभी लोगोंने,—मरोड़कर तोड़ दिये हैं। और कौन कह सकता है कि यह भी ठीक नहीं हुआ है ? उसके बलिष्ठ और समूचे हाथोंका अपर्याप्त दान ग्रहण करनेकी शक्ति जब लोगोंमें नहीं थी, तब उसके टूटे हाथ ही उन लोगोंके असली काममें आवेंगे।

[विश्वेश्वरी एक ठंढी साँस ले लेती है। रमा थोड़ी देर तक उसका हाथ इधर-उधर हिलाती रहती है और तब फिर वह भी ठंढी साँस लेती है।]

रमा—ताईजी !

विश्वे०—क्यों बेटी ?

रमा—अपयश और तिरस्कार अब मुझे नहीं छूता ताईजी। जिस दिन झूठी गवाही देकर मैंने उन्हें जेल भेजा है उस दिनसे संसारकी सारी व्यथा मेरे लिए परिहास-सी हो गई है।

विश्वे०—ऐसा ही होता है बेटी !

रमा—सभी कहने लगे कि शत्रुका, चाहे जिस तरह हो, निपात करनेमें कोई दोष नहीं है और उन लोगोंने यही किया। लेकिन मैं तो यह कैफियत नहीं दे सकती ताईजी।

विश्वे०—क्यों, तुम क्यों नहीं दे सकतीं ?

रमा—नहीं ताईजी, नहीं। एक बात है जो मैं आज तुम्हारे निकट स्वीकार करती हूँ। मोडलके घरपर सब लड़के इकट्ठे होकर रमेश भइयाके कहनेके अनुसार ही सच्ची आलोचना किया करते थे। उन लोगोंको बदमाशोंका दल बतलाकर पुलिससे पकड़वा देनेका एक षड्यन्त्र चल रहा था। मैंने आदमी भेजकर उनको सावधान कर दिया। क्योंकि पुलिस तो यही चाहती है। अगर एक बार वे पुलिसके हाथमें पड़ जाते, तो फिर खैरियत नहीं थी।

विश्वे०—(काँपकर) कहती क्या हो रमा ? क्या वेणी अपने गाँवमें पुलिसको झूठमूठ बुलाकर उससे उत्पात कराना चाहता था ?

रमा—मुझे तो जान पड़ता है कि बड़े भइयासे जो यह दंड मिला है, सो उसीका फल है। ताईजी, तुम मुझे माफ कर सकोगी ?

विश्वे०—उसकी माँ होकर भी अगर माफ न कर सकूँगी, तो फिर और कौन माफ करेगा ? मैं तो आशीर्वाद देती हूँ कि भगवान तुम्हें इसका पुरस्कार दें।

रमा—(हाथसे अपने आँसू पोंछकर) मेरे लिए तो अब यही एक सान्त्वना है कि जब वे जेलसे छूटकर आयँगे तब देखेंगे कि उनके आनन्दका क्षेत्र तैयार हो गया है। उन्होंने जो चाहा था वही हुआ है,—उनके उसी देशके दीन दुःखिया अबकी बार नींदसे उठ बैठे हैं, उन्हें पहचान गये हैं और उनसे प्रेम करने लग गये हैं। क्या इस प्रेमके आनन्दमें वे मेरा अपराध न भूल सकेंगे ? ताईजी, सिर्फ एक जगह हम दूर नहीं हो पाये हैं। तुमसे हम दोनों ही प्रेम करते हैं।

[विश्वेश्वरी चुपचाप उसकी ठोढ़ी पकड़कर चूम लेती है।]

रमा—उसी जोरसे एक दावा तुम्हारे सामने रखे जाती हूँ। जिस समय मैं नहीं रहूँगी उस समय भी यदि वे मुझे क्षमा न कर सकें, तो मेरी ओरसे उनसे केवल इतना ही कह देना कि वे मुझे जितनी बुरी समझते थे, उतनी बुरी मैं नहीं थी। और जितना दुःख मैंने उन्हें दिया है, उससे कहीं अधिक दुःख स्वयं मैंने भी भोगा है। तुम्हारे मुँहसे वे यह बात सुनेंगे तब शायद अविश्वास न कर सकेंगे।

विश्वे०—तब तो बेटी, चलो हम लोग किसी तीर्थ-स्थानमें चलकर रहें। हम लोग वहाँ चलें जहाँ न रमेश हो और न वेणी हो, और जहाँ आँख उठाते ही भगवानके मंदिरका शिखर दिखलाई पड़े। रमा, मैंने सब बातें समझ ली हैं। और बेटी, अगर तुम्हारे जानेका दिन ही आ पहुँचा हो, तो मैं यह विष हृदयमें रखकर नहीं ले जाऊँगी, सब यहीं निःशेष करके डाल जाऊँगी। क्यों बेटी, यह कर सकोगी ?

रमा—(विश्वेश्वरीके घुटनोंमें मुँह छिपाकर और विकलतापूर्वक रोकर) मुझसे नहीं हो सकेगा ताईजी ! तुम मुझे यहाँसे ले चलो।

चौथा दृश्य

स्थान—जेलखानेके सामनेका रास्ता। एक ओरसे रमेश और दूसरी ओरसे वेणीका प्रवेश। वेणीके सिरपर पट्टी बँधी हुई है। साथमें स्कूलके हेडमास्टर वनमाली और कुछ विद्यार्थी हैं। पीछे पीछे वेणीके साथी और भी दो-चार आदमी हैं।]

वेणी—(रमेशको गले लगाकर) भाई रमेश, अब मुझे पता चला है कि अपने रक्तका कितना अधिक आकर्षण होता है। मैं यह बात जानकर भी नहीं

जानता था कि रमा उस आचार्य हरामजादेको अपने हाथमें करके इस तरहकी शत्रुता करेगी और सारी शरम-हयाको ताकमें रखकर स्वयं आकर झूठी गवाही देकर इतना दुःख देगी। भगवानने इसका दंड भी मुझे दे दिया है। भइया, जेलमें तुम तो बल्कि अच्छी तरह थे, लेकिन मैं तो बाहर रहते हुए भी इधर कई महीनोंसे मानो भूसेकी आगमें जल रहा हूँ।

[रमेश हत-बुद्धिकी तरह खड़े देखते रहते हैं और उनकी समझमें नहीं आता कि क्या करें। वनमाली और विद्यार्थी आगे बढ़कर उनके चरण छूते हैं।]

वेणी—(रोकर) भाई, तुम अपने बड़े भइयापर नाराज मत रहना। चलो, घर चलो। माँने रो रोकर दोनों आँखें अन्धी करनेका उपक्रम कर रक्खा है! रमेश, हम लोगोंकी केवल जान ही बच रही है।

रमेश—(वेणीके सिरपर बँधी हुई पट्टीकी ओर संकेत करके) बड़े भइया, यह क्या हुआ? तुम्हारा सिर किस तरह फूटा?

वेणी—सुननेसे क्या होगा भाई, मैं किसीको दोष नहीं देता। यह मेरे ही कर्मोंका फल है। मेरे ही पापोंका दंड है। रमेश, तुम तो जानते ही हो कि जन्मसे मुझमें एक दोष है कि यह मुझसे नहीं होता कि मनमें तो कोई और बात रक्खूँ और मुँहसे कोई और बात कहूँ। जिस तरह और सब लोग अपने मनकी बात अपने मनमें छिपाकर रखते हैं, उस तरह मैं नहीं रख सकता। इसके लिए मुझे न जाने कितने दंड भोगने पड़े हैं, लेकिन फिर भी मेरी आँखें नहीं खुलीं। मेरा दोष केवल यही था कि उस दिन रोते रोते कह बैठा कि रमा, मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया था जो तुमने मेरे भाईको जेल भेजवा दिया। जेल जानेकी बात सुनकर माँ तो जान ही दे देगी। हम भाई भाई सम्पत्तिके लिए आपसमें झगड़ा भले ही करते रहें, फिर भी है तो वह हमारा भाई ही। तुमने एक ही चोटमें मेरे भाईको भी मारा और माको भी मारा। रमेश, उस दिन रमाकी जो उग्र मूर्ति देखी थी, उसे स्मरण करके आज भी कलेजा काँप जाता है। उसने कहा कि क्या रमेशके बाप मेरे बापको जेल नहीं भेजना चाहते थे? बस चलता तो क्या छोड़ देते?

रमेश—हाँ, रमाकी मौसीके मुँहसे भी मैंने यह बात सुनी थी।

वेणी—यह तो हुआ उसका जातक्रोध। लेकिन स्त्रीका इतना अहंकार मुझसे

नहीं सहा गया। मैंने भी गुस्सेमें आकर कह डाला कि अच्छा उसको जेलसे आने दो तब फिर समझा जायगा। लेकिन भाई, खून करना तो उसका अभ्यास ही ठहरा। तुम्हें क्या याद नहीं है कि तुम्हारा खून करनेके लिए उसने अकबर लठैतको भेजा था? लेकिन तुम्हारे आगे तो उसकी चालाकी चली नहीं; उलटे तुम्हींने उसे सबक सिखला दिया। लेकिन मेरा खून करना कौन मुश्किल है?

रमेश—फिर क्या हुआ?

वेणी—इसके बाद जो कुछ हुआ, वह क्या मुझे याद है? मैं कुछ भी नहीं जानता कि किस तरह मुझे अस्पताल ले गये, वहाँ क्या हुआ, किसने देखा। इस बार जो मै जीता बच गया हूँ, सो केवल माँके पुण्यसे। ऐसी माँ और किसकी है रमेश!

[रमेशके मनमें और चेहरेपर क्या क्या होने लगा, इसका कोई ठिकाना नहीं,—उसने एक बात भी नहीं कही।]

वेणी—भाई, गाड़ी तैयार है। अब देर मत करो। घर चलो। तुम्हें ले चलकर माँके पास पहुँचा दूँ तो मुझे चैन मिले।

रमेश—चालिए। जेलमें ही सुना था कि रमा बहुत बीमार है?

वेणी—रमेश, ईश्वरका दंड है। यह क्या सभीको याद रहता है कि उसका ही राज्य है? चलो भाई, घर चलो। (सबका प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

[रमाके कमरेमें रमेशका प्रवेश। रमाको देखकर चौंक पड़ते हैं।]

रमेश—तुम इतनी ज़्यादा बीमार हो यह तो मैंने नहीं सोचा था।

[रमा बहुत कठिनतासे उठकर बैठती है और रमेशके चरणोंकी तरफ झुककर प्रणाम करती है।]

रमेश—अब कैसी हो रानी?

रमा—आप मुझे रमा ही कहकर पुकारा करें।

रमेश—अच्छी बात है। सुना कि तुम बीमार थीं। अब कैसी हो, यही जानना चाहता था। नहीं तो नाम तुम्हारा चाहे जो हो, उस नामसे पुकारनेकी मेरी इच्छा भी नहीं है और आवश्यकता भी नहीं है।

रमा—अब मैं अच्छी हूँ। मैंने आपको बुलवा भेजा था, इसलिए शायद आपको बहुत आश्चर्य हुआ होगा। लेकिन—

रमेश—नहीं, आश्चर्य नहीं हुआ। तुम्हारे किसी कामसे आश्चर्य होनेके दिन निकल गये। लेकिन, पूछता हूँ कि मुझे किस लिए बुलाया है?

रमा—(थोड़ी देर तक सिर झुकाकर चुप रहनेके बाद) रमेश भइया, आज मैंने तुम्हें दो कामोंके लिए कष्ट दिया है। यह तो मै जानती हूँ कि मैंने कितने अपराध किये हैं, लेकिन फिर भी मुझे निश्चय था कि तुम अवश्य आओगे और मेरे ये दो अन्तिम अनुरोध भी अस्वीकृत न करोगे।

(रुलाईके कारण उसका गला काँप जाता है।)

रमेश—क्या अनुरोध हैं?

रमा—(चकितके समान सिर उठाकर फिर नीचा कर लेती है।) बड़े भइया तुम्हारी सहायतासे पीरपुरकी जिस जायदादपर कब्जा करना चाहते हैं, वह जायदाद मेरी अपनी है। पिताजी खास तौरपर वह मुझे ही दे गये हैं। उसमें पन्द्रह आने मेरा है और एक आना तुम लोगोंका। वही जायदाद मै तुम्हें दे जाना चाहती हूँ।

रमेश—तुम डरो मत। बड़े भइया चाहे मुझसे कितना ही क्यों न कहें, लेकिन चोरी करनेमें न मैंने पहले कभी किसीकी सहायता की और न अब करूँगा। और तुम दान ही करना चाहती हो तो उसके लिए और बहुतसे लोग हैं। मै दान ग्रहण नहीं करता।

रमा—मैं जानती हूँ रमेश भइया, कि तुम चोरी करनेमें किसीकी सहायता नहीं करोगे। और यह भी जानती हूँ कि अगर तुम लोगे भी तो अपने लिए नहीं लोगे। लेकिन सो तो नहीं है। दोष करनेपर दंड मिलता है। मैंने जो अपराध किये हैं, उनके दंडके रूपमें ही इसे क्यों नहीं ग्रहण करते?

रमेश—और तुम्हारा दूसरा अनुरोध?

रमा—मैं अपने यतीन्द्रको तुम्हारे हाथ सौंप जाती हूँ।

रमेश—‘ सौंप जाती हूँ ’ के क्या माने?

रमा—(रमेशके मुँहकी ओर देखकर) रमेश भइया, एक दिन कोई भी माने तुमसे छिपे नहीं रहेंगे। इसी लिए मैं अपने यतीन्द्रको तुम्हारे ही सपुर्द कर जाऊँगी। उसे तुम अपनी ही तरह सिखा-पढ़ाकर अपने ही जैसा बनाना जिससे

बड़ा होकर वह तुम्हारी ही तरह स्वार्थ-त्याग कर सके। (आँचलसे आँसू पोंछकर) मैं यह अपनी आँखोंसे नहीं देख सकूँगी। लेकिन मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यतीन्द्रके शरीरमें उसके पूर्व-पुरुषोंका रक्त है। त्यागकी जो शक्ति उसकी अस्थि और मज्जामें मिली हुई है, अगर उसे ठीक तरहसे सिखाया पढ़ाया गया तो शायद वह भी एक दिन तुम्हारी ही तरह सिर ऊँचा करके खड़ा हो सकेगा।

[रमेश चुप रहते हैं।]

रमा—रमेश भइया, इस तरह चुप रहनेसे तो मैं आज तुम्हें नहीं छोड़ूँगी।

रमेश—देखो, इन सब बातोंमें मुझे मत घसीटो। मैं बहुतसे दुःख सहनेके बाद प्रकाशकी थोड़ी-सी शिखा प्रज्वलित कर सका हूँ, इसलिए मुझे बराबर भय बना रहता है कि कहीं वह जरामें ही न बुझ जाय।

रमा—नहीं रमेश भइया, डरकी कोई बात नहीं है। यह प्रकाश अब नहीं बुझेगा। ताईजीने कहा था कि तुम बहुत दूरसे आकर और बहुत बड़ी ऊँचाई-पर बैठकर काम करना चाहते थे और इसीलिए तुम्हारे कामोंमें इतनी बाधाएँ आई हैं। उस समय परायोंकी तरह तुम ग्राम्य-समाजसे बाहर थे, परन्तु अब हो गये हो उनके ही एक आदमी। उस समय तुम्हारा दिया हुआ एक विदेशीका दान था, परन्तु, अब वह आत्मीयका स्नेहपूर्ण उपहार हो गया है। अब तुम वह नहीं रह गये हो जो दुःख पाओ और दुःख सहो। इसीलिए अब यह प्रकाश मद्धिम नहीं पड़ेगा, बल्कि दिनपर दिन उज्ज्वल होता जायगा।

रमेश—ठीक जानती हो रमा, कि हमारे इस दीपककी शिखा अब नहीं बुझेगी?

रमा—हाँ, ठीक जानती हूँ। यह उन ताईजीकी कही हुई बात है जो सब जानती हैं। यह काम तुम्हारा ही है। मेरे यतीन्द्रको तुम अपने हाथोंमें ले लो, मेरे सब अपराध क्षमा करो और आज मुझे यह आशीर्वाद दो कि मैं निश्चिन्त होकर जा सकूँ।

रमेश—रमा, तुम जानेकी बात क्यों सोच रही हो? मैं कहता हूँ कि तुम फिर अच्छी हो जाओगी।

रमा—रमेश भइया, मैं अच्छे होनेकी बात नहीं सोच रही हूँ, सोच रही हूँ केवल अपने जानेकी बात। लेकिन मेरा और भी एक अनुरोध तुम्हें मानना पड़ेगा। मेरे विषयमें तुम कभी बड़े भइयाके साथ झगड़ा मत करना।

रमेश—इसके माने ?

रमा—माने अगर कभी सुन पाओ, तो केवल इसी बातको स्मरण रखना कि मैं किस तरह चुपचाप सहती हुई चली गई और मैंने एक भी बातका प्रतिवाद नहीं किया। एक दिन जब मुझे असह्य हो गया था तब ताईजीने आकर कहा था कि मिथ्याको आन्दोलन करके जगाये रखनेसे ही उसकी आयु बढ़ती जाती है। अपनी असहिष्णुतासे उसकी आयु बढानेके समान पाप बहुत ही कम हैं। उनका यही उपदेश स्मरण रखकर मैं सभी दुःख और दुर्भाग्य काट सकी हूँ। रमेश भइया, तुम भी यह बात कभी मत भूलना।

[रमेश चुपचाप मुँहकी ओर देखते रहते हैं।]

रमा—रमेश भइया, तुम आज यह समझकर दुखी मत होना कि तुम मुझे क्षमा नहीं कर सकते हो। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि जो बात आज कठिन जान पड़ती है, वही एक दिन सहज और सीधी हो जायगी। उस दिन तुम सहजमें ही मेरे सब अपराध क्षमा कर दोगे और इसी विश्वाससे मेरे मनमें कोई क्लेश या दुःख नहीं है। मैं कल सबेरे ही जा रही हूँ।

रमेश—कल सबेरे ही कहाँ जाओगी ?

रमा—जहाँ ताईजी ले जायँगी, वहीं जाऊँगी।

रमेश—लेकिन सुना है कि वे तो फिर लौटकर नहीं आवेंगी।

रमा—मैं भी नहीं आऊँगी। आज मैं भी तुम्हारे चरणोंसे सदाके लिए विदा होती हूँ।

[इतना कहकर रमा जमीनपर सिर रखकर प्रणाम करती है।]

रमेश—अच्छा जाओ। लेकिन क्या यह भी नहीं जान सकूँगा कि क्यों इस प्रकार अकस्मात् विदा हो रही हो ?

[रमा चुप रहती है।]

रमेश—यह तुम्हीं जानो कि क्यों तुम अपनी सब बातें इस प्रकार छिपा रखकर चली जा रही हो। लेकिन मैं भी भगवानके निकट अपने शरीर और मनसे प्रार्थना करता हूँ कि मैं एक दिन तुम्हें अपने समस्त अन्तःकरणसे क्षमा कर सकूँ। तुम्हें क्षमा न कर सकनेके कारण मुझे जो कष्ट हो रहा है, वह मेरे अन्तर्यामी ही जानते हैं।

[अकस्मात् विश्वेश्वरीका प्रवेश]

विश्वे०—रमा !

रमेश—ताईजी, किस अपराधके कारण आप इस प्रकार हम लोगोंको छोड़कर चली जा रही हैं ?

विश्वे०—अपराध ? भइया, अगर अपराधोंकी बात कही जाय, तो उसका कभी अन्त ही नहीं होगा। इस लिए उसकी जरूरत नहीं। लेकिन मेरी बात तुम जान रक्खो। अगर मैं यहाँ मरूँगी रमेश, तो वेणी मेरे मुँहमें आग देगा, जिससे मैं किसी तरह मुक्ति न पा सकूँगी। यह जीवन तो जलते-भुनते ही बीता, लेकिन रमेश, कहीं परलोक भी इसी तरह जलते-भुनते न बीते, इसी डरसे भाग रही हूँ।

रमेश—ताईजी, तुमने यह तो कभी मुझपर प्रकट नहीं होने दिया कि लड़केका अपराध तुम्हारे कलेजेको इस तरह वेध रहा है। लेकिन रमा क्यों सब कुछ छोड़कर बिदा होना चाहती है ? उसे तुम कहाँ ले जाओगी ?

रमा—मैं जाती हूँ ताईजी। (रमाका प्रस्थान)

विश्वे०—तुम पूछ रहे थे कि रमा क्यों बिदा होना चाहती है ? मैं उसे कहाँ ले जाना चाहती हूँ ? ससारमें उसे स्थान नहीं मिला रमेश, इसीलिए उसे भगवानके चरणोंमें ले जा रही हूँ। यह तो नहीं जानती कि वहाँ जानेपर भी वह बचेगी या नहीं, लेकिन यदि बच रही, तो मैं उससे बाकी जीवन इसी अति कठिन प्रश्नकी मीमासा करनेमें बितानेके लिए कहूँगी कि क्यों भगवानने उसे इतना अधिक रूप, इतना अधिक गुण और इतना बड़ा एक महाप्राण देकर इस ससारमें भेजा था और क्यों बिना किसी दोष या अपराधके उसके सिरपर दुःखोंका इतना बड़ा बोझ लादकर फिर ससारके बाहर फेंक दिया : यह उसीका अभिप्राय है या केवल हमारे समाजके खयालोंका खेल है। अरे रमेश, उसके समान दुःखिनी शायद इस पृथिवीपर और कोई नहीं है !

[विश्वेश्वरीका गला भर आता है। रमेश चुपचाप उसके मुँहकी ओर देखते रहते हैं।]

विश्वे०—लेकिन रमेश, तुम्हारे लिए मेरा यही आदेश रहा कि तुम उसे गलत न समझना। मैं चलते समय किसीकी कोई शिकायत नहीं करना चाहती, लेकिन मेरी इस बातपर कभी भूलकर भी अविश्वास मत करना कि उससे चढकर तुम्हारा मगल चाहनेवाली और कोई नहीं है।

रमेश—लेकिन ताईजी,—

विश्वे०—रमेश, इसमें लेकिन-वेकिनको कोई जगह नहीं है। तुमने जो कुछ सुना है, सब झूठ है, और जो कुछ जाना है, सब गलत है। लेकिन इस अभियोगकी अब यहीं समाप्ति करो। तुम्हारे लिए उसकी अन्तिम प्रार्थना यही है कि तुम्हारे कल्याणका कार्य नदीकी बाढ़की तरह समस्त द्वेष और ईर्षाको बहाता हुआ चला जाय। इसीलिए उसने मुँह बन्द रखकर सब कुछ सहा है। उसके प्राण जा रहे हैं, फिर भी उसने बात नहीं कही रमेश।

रमेश—ताईजी, उससे कहो—

विश्वे०—अगर हो सके तो तुम्हीं उससे कहना रमेश। मुझे अब समय नहीं है। (प्रस्थान)

[यतीन्द्रको साथ लिये हुए रमाका प्रवेश। उसके वस्त्रोंसे जान पड़ता है कि वह कहीं दूर जा रही है।]

रमेश—(चकित होकर) यह क्या ? इतनी रातको यह वेष क्यों ?

रमा—रमेश भइया, मैं यात्राके लिए घरसे निकल चुकी हूँ। अब रात नहीं है। जानेसे पहले दो काम बाकी थे। एक तो अन्तिम बार तुम्हारे चरणोंकी धूल लेना और दूसरे यतीन्द्रको तुम्हारे हाथमें सौंपना।

रमेश—यह भार मुझे ही दे जाओगी रमा ?

रमा—रमा नहीं, रानी। उसका सबसे अधिक प्यारा धन यही छोटा भाई है। रमेश भइया, उसे तुम्हारे सिवा और कौन ले सकता है ?

रमेश—लेकिन इसमें कितना बड़ा उत्तरदायित्व है रमा,—यह अनुरोध—

रमा—अब भी वही रमा ? लेकिन यह तो अनुरोध नहीं है, यह तो उसका दावा है। यही दावा लेकर वह एक दिन संसारमें आई थी और यही दावा लेकर संसारसे जायगी। रमेश भइया, इस दावेका तो कहीं अन्त नहीं है। इससे तुम कैसे बच सकते हो ? यह लो।

[रमेशके हाथमें यतीन्द्रका हाथ पकड़ा देती है और जमीनपर झुककर प्रणाम करती है।]

यवनिका-पतन

परिणीता

छाती में जब शक्ति-बाण लगा तब लक्ष्मणका चेहरा अवश्य ही बहुत म्लान हो गया होगा, किन्तु गुरुचरणका चेहरा तब शायद उससे भी ज्यादा मलीन दिखाई दिया जब कि सबेरे ही अन्तःपुरसे यह समाचार आ पहुँचा कि उनकी स्त्रीने अभी अभी बिना किसी बाधा-विघ्नके पाँचवी कन्याको जन्म दिया है।

गुरुचरण बैङ्कमें साठ रुपयेकी नौकरी करते हैं,—क्लार्क हैं। लिहाजा, उनका शरीर किरायेकी गाड़ीके घोड़ेका-सा जैसा दुबला-पतला है, आँखों और चेहरेपर भी उनके वैसा ही एक तरहका निष्काम निर्विकार निर्लिप्त भाव है। फिर भी, इस भयकर शुभ सवादसे आज उनके हाथका हुक्का हाथहीमें रह गया, वे फटे-पुराने पैतृक तकियेके सहारे बैठ गये और एक गहरी या ठडी साँस लेनेकी भी उनमें ताकत नहीं रही।

इस शुभ-सवादको लाई थी उनकी तीसरी लड़की दस सालकी अन्नाकाली। उसने कहा, "बाबूजी, चलो न, देख आओ।"

गुरुचरणने लड़कीके चेहरेकी तरफ देखकर कहा, "बिटिया, एक गिलास पानी तो ले आ, पीऊँगा।"

लड़की पानी लाने चली गई। उसके चले जानेपर गुरुचरणको सबसे पहले याद आई सौरीके तरह-तरहके खर्चेकी बात। उसके बाद, भीड़के दिनोंमें

स्टेशनपर गाडी आनेपर दरवाजा खुला पाते ही थर्डक्लासके यात्री जैसे अपना बोरिया-बसना लेकर पागलकी तरह लोगोंको रौंधते हुए भीतर आ भरते हैं, उसी तरह 'मारो मारो'का शोर करती हुई तरह-तरहकी दुश्चिन्ताएँ धड़ाधड़ उनके दिमागमें आने लगीं। याद आ गया कि पिछले साल दूसरी कन्याके शुभ विवाहमें उनको अपना यह बहूबाजारका दुमंजिला पैतृक मकान तक गिरवी रखना पड़ा था, जिसका कि अभी छह महीनेका सूद चुकाना बाकी है। दुर्गा-पूजा आनेमें अब महीने-भरकी ही देर है—मझली लडकीके घर सौगात भेजनी है। आफिसमे कल रातको आठ बजे तक डेबिट्-क्रेडिट् (=जमा-खर्च) मिली नहीं है, आज बारह बजेके भीतर विलायतको हिसाब भेजना है। कल बडे साहबने हुक्म सुना दिया है कि मैले कपड़े पहनकर कोई आफिसमें नहीं आ सकेगा, जुरमाना होगा, और मजा यह कि पिछले हफ्तेसे धोबीका पता ही नहीं चलता कि क्या हुआ? घर-गृहस्थीके आधे कपड़े उसीके पास हैं, कहीं लेकर चम्पत न हो गया हो! गुरुचरणसे अब तकियेके सहारे बैठा नहीं गया, हुक्का अलग रखकर लेट गये। मन ही मन कहने लगे : भगवन्, इस कलकत्ता शहरमें रोजमर्रा न जाने कितने आदमी घोड़ा-गाड़ीके नीचे दबकर बेमौत मर जाया करते हैं, तुम्हारे चरणोंमें क्या वे मुझसे भी ज्यादा अपराधी हैं? दयामय! तुम्हारी दयासे एक भारी-सी मोटर-गाड़ी भी अगर मेरी छातीके ऊपरसे निकल जाती!"

अन्नाकाली पानी ले आई, बोली, "उठो, पानी पी लो।"

गुरुचरणने उठकर साराका सारा पानी एक ही साँसमें पी लिया, बोले, "ओःफ्, जा बिटिया, गिलास ले जा।"

उसके चले जानेपर गुरुचरण फिर लेट गये।

ललिताने कमरेमें आकर कहा, "मामाजी, चाय लाई हूँ, उठो।"

चायके नामसे गुरुचरण फिर एक बार उठ बैठे। ललिताके चेहरेकी तरफ देखकर उनकी आंधी आग मानो बुझ गई, बोले, "रात-भर जगी है बेटी, आ मेरे पास आकर जरा बैठ जा।"

ललिता लजीली हँसी हँसती हुई पास आकर बैठ गई, बोली, "मैं रातको ज्यादा नहीं जगी मामाजी।"

इस जीर्ण-शीर्ण गुरुभारग्रस्त अकालवृद्ध मामाके हृदयकी छिपी हुई व्यथाको इस घरमें उससे ज्यादा और कोई नहीं समझता।

गुरुचरणने कहा, "न सही, तू आ, मेरे पास तो आ।"

ललिताके पास आकर बैठते ही गुरुचरणने सहसा उसके माथेपर हाथ रखकर कहा, " अपनी इस बिटियाको अगर राजाके घर दे सकता, तो समझता कि हॉं एक अच्छा काम किया ! "

ललिता सिर झुकाये चाय ढालने लगी, गुरुचरण कहने लगे, " क्यों बिटिया, तुझे अपने इस दु:खी मामाके घर आकर रात-दिन सिर्फ मेहनत ही करनी पड़ती है, क्यों ? "

ललिताने सिर हिलाते हुए कहा, " दिन-रात मेहनत क्यों करने लगी मामा ? सभी काम करते हैं, मैं भी करती हूँ । "

अब गुरुचरण जरा हँस दिये । चाय पीते हुए बोले, " अच्छा ललिता, आज रसोईका क्या होगा ? "

ललिताने मुँह उठाकर कहा, " क्यों मामा, मैं बनाऊँगी न ! "

गुरुचरणने आश्चर्यके साथ पूछा, " तू कैसे बनायेगी बिटिया, तुझे क्या बनाना आता है ? "

" आता है मामा ! मैंने माईसे सब सीख लिया है । "

गुरुचरणने चायका प्याला नीचे रखकर कहा, " सच्ची ? "

" सच्ची । माई दिखा बता देती हैं,—मैंने तो कई बार बनाई है । "

कहकर उसने सिर झुका लिया । उसके झुके हुए सिरपर हाथ रखकर गुरुचरणने मन ही मन आशीर्वाद दिया । उनकी एक भारी चिन्ता दूर हो गई ।

इनका मकान गलीके ऊपर ही है । चाय पीते हुए खिड़कीमेंसे बाहर नजर पडते ही गुरुचरणने चिल्लाकर कहा, " शेखर हो क्या ? सुनो, सुनो । "

एक लम्बे कदका बलवान् सुन्दर युवक भीतर चला आया ।

गुरुचरणने कहा, " बैठो, आज तुमने अपनी चाचीकी सबेरेकी करतूत तो सुन ही ली होगी ? "

शेखरने मुसकराते हुए कहा, " करतूत क्या कर डाली, लड़की हुई है, यही न ? "

गुरुचरणने एक गहरी साँस ली, और कहा, " तुमने तो कह दिया, ' यही न ' ? पर वह ' यही ' क्या है, सो तो सिर्फ मैं ही जानता हूँ । '

शेखरने कहा, " ऐसा न कहा कीजिए चाचा, चाची सुनेंगीं तो उन्हें बड़ा दुःख होगा । इसके सिवा भगवानने जिसको भेजा है, उसको लाड़-प्यारके साथ अंगीकार करना ही चाहिए । "

गुरुचरण क्षण-भर मौन रहकर बोले, " लाड़-प्यार करना चाहिए, सो तो मैं भी जानता हूँ। लेकिन बेटा, भगवान भी तो न्याय नहीं करते। मैं गरीब हूँ, मेरे घर इतनी बहुत क्यों ? रहनेका यह मकान तक तो तुम्हारे बापके हाथ गिरवीं रक्खा है। खैर कोई बात नहीं, इसके लिए मुझे दुःख नहीं शेखर !—पर यह तो विचार कर देख बेटा, यह जो हमारी ललिता है,—मा, बाप कोई नहीं हैं इसके, सोनेकी पुतली है यह, यह तो सिर्फ राजाके घर ही शोभा पा सकती है, —कैसे इसे हृदय थामकर चाहे जिसके हाथ सौंप दूँ, बता ? राजाके मुकुटपर जो कोहिनूर चमकता है, वैसे ढेरों कोहिनूरोंके साथ तौलनेसे भी मेरी इस बिटियाकी कीमत नहीं हो सकती। पर इस बातको समझेगा कौन ? पैसेकी कमीके कारण मुझे ऐसे रत्नको भी गँवा देना पड़ेगा। बताओ तो बेटा, तब कैसा तीर-सा कलेजे पर लगेगा ? तेरह सालकी हो चुकी, पर इस वक्त मेरे हाथमें तेरह पैसे भी नहीं कि कोई सगाई-सम्बन्ध ठीक कर सकूँ। "

गुरुचरणकी आँखोंमें आँसू भर आये। शेखर चुपचाप बैठा रहा। गुरुचरण कहने लगे, " शेखरनाथ, देखना तो बेटा, तुम्हारे मित्रोंमें अगर कोई इस लड़कीका कुछ किनारा कर सके। सुना है आजकल बहुतसे लड़के रुपयोंकी तरफ उतना ध्यान नहीं देते, सिर्फ लड़की देखकर ही पसन्द कर लेते हैं। ऐसा ही कोई लड़का भाग्यसे अगर मिल जाय शेखर, तो मैं सच कहता हूँ तुमसे, मेरे आशीर्वादसे तुम राजा हो जाओगे। और क्या कहूँ बेटा, तुम्हारे बाप मुझे छोटे भाईके समान ही समझते हैं। "

शेखरने सिर हिलाकर कहा, " अच्छी बात है, मैं तलाश करूँगा। "

गुरुचरणने कहा, " भूलना मत बेटा, निगाह रखना। ललिता तो आठ सालकी उम्रसे तुम्हारे ही पास पढ़-लिखकर इतनी बड़ी हुई है,—तुम तो जानते ही हो कैसी बुद्धिमती है, कैसी शान्त-शिष्ट है। जरा-सी है, फिर भी आजसे यहीं रसोई-बसोई बनायेगी, खिलायेगी-पिलायेगी, सब कुछ तो इसीके ऊपर है। "

इसी समय ललिताने जरा आँखें उठाकर देखा, और फिर नीचेको निगाह कर ली। उसके ओठोंके दोनों किनारे जरा फैल-भर गये। गुरुचरणने एक गहरी साँस लेकर कहा, " इसके बापने क्या कुछ कम रोजगार किया था, पर सब कुछ इस तरह दान कर गये कि अपनी लड़कीके लिए भी कुछ नहीं छोड़ गये। "

शेखर चुप रहा, गुरुचरण फिर स्वय ही कहने लगे, " और यह भी देखो

कहा जाय कि कुछ छोड़ नहीं गये ? उन्होंने जितने आदमियोंके जितने कष्ट दूर किये हैं, उनका फल सिर्फ इस बिटियाके लिए छोड़ गये हैं, नहीं तो क्या इतनी-सी लड़की ऐसी अन्नपूर्णा हो सकती थी ! तुम्हीं बताओ न शेखर, सच है या नहीं ? ”

शेखर हँसने लगा, कुछ जवाब नहीं दिया।

वह उठने लगा तो गुरुचरणने पूछा, “ इतने सबेरे ही कहाँ जा रहे हो ? ”

शेखरने कहा, “ बैरिस्टरके घर,—एक केस है। ” कहता हुआ वह उठ खड़ा हुआ। गुरुचरणने फिर एक बार याद दिलाते हुए कहा, “ जरा खयाल रखना बेटा। ललिता देखनेमें जरा श्यामवर्ण जरूर है, पर ऐसी आँखें, ऐसा चेहरा, ऐसी हँसी,—इतनी दया-ममता दुनियामें ढूँढ़नेपर भी कहीं नहीं मिलेगी।”

शेखर सिर हिलाता और हँसता हुआ बाहर चला गया।

इस लड़केकी उम्र पचीस-छब्बीस वर्षकी होगी। एम० ए० पास करके इतने दिनोंतक और भी पढ़-लिख रहा था। पिछले साल अटर्नी हुआ है। इसके पिता नवीनचन्द्र गुड़के काममें लखपती होकर कुछ सालसे व्यापार छोड़कर घर-बैठे तिजारत कर रहे हैं। बड़ा लड़का अविनाशचन्द्र वकील है, छोटा शेखर अटर्नी हो गया है। उनका भारी तिमँजिला मकान मुहल्लेमें सबसे ऊँचा है। गुरुचरणकी छतसे उसकी छत मिली होनेसे दोनों परिवारोंमें घनिष्ठता हो गई है। घरकी औरतें इस छत-पथसे ही एक दूसरेके यहाँ आया-जाया करती हैं।

२

श्यामबाजारके एक बड़े आदमीके यहाँ बहुत दिनोंसे शेखरके ब्याहकी बातचीत चल रही थी। उस दिन जब वे शेखरको देखने आये तो उन लोगोंने चाहा कि आगामी माघ महीनेमें ही कोई एक शुभ दिन दिखलाकर ब्याह पक्का कर दिया जाय। पर शेखरकी माने मजूर नहीं किया। मेहरीसे कहला भेजा कि लड़का खुद देखकर पसन्द कर लेगा, तब ब्याह पक्का होगा।

नवीनचन्द्रकी दृष्टि सिर्फ रुपयोंकी तरफ थी, उन्होंने अपनी स्त्रीकी इस संशयात्मक बातसे अप्रसन्न होकर कहा, “ यह कैसी बात है ! लड़की तो देखी-दाखी है। बातचीत पक्की हो जाने दो, आशीर्वाद करनेके दिन और अच्छी तरह देख ली जायगी। ”

फिर भी गृहिणी सहमत न हुई, पक्की बात नहीं कहने दी। नवीनचन्द्रने

उस दिन गुस्सेमें आकर बहुत अबेरमें भोजन किया, और दोपहरका आराम बाहरकी बैठकमें ही किया।

शेखरनाथ जरा कुछ शौकीन तबीयतका है। वह तिमंजिलेपर जिस कमरेमें रहता है वह बहुत ही सजा हुआ है। पाँच-छह दिन बाद, एक दिन तीसरे पहर उस कमरेमें बड़े शीशेके सामने खड़ा होकर शेखर लड़की देखने जानेके लिए तैयार हो रहा था, इतनेमें ललिता भीतर चली आई। कुछ देर चुपचाप खडी देखती रहनेके बाद उसने पूछा, "बहू देखने जा रहे हो न ?"

शेखरने मुड़कर उसकी तरफ देखते हुए कहा, "आ गई ? अच्छा हुआ, खूब अच्छी तरह सजा तो दो जिससे बहूको मैं पसन्द आ जाऊँ।"

ललिता हँस दी। बोली, "अभी तो मुझे फुरसत नहीं शेखर-भइया,—मैं रुपये लेने आई हूँ।" यह कहते हुए उसने तकियेके नीचेसे चाबियोंका गुच्छा उठाकर ड्रॉयर खोला और गिन-गिनकर कुछ रुपये लेकर आँचलमें बाँधते हुए बहुत ही धीरेसे मानो मन ही मन कहा, "रुपये तो जरूरत पड़नेपर ले ही जाया करती हूँ, पर ये चुकेंगे कैसे ?"

शेखरने एक तरफके बालोंको ढंगके साथ ऊपरकी ओर उठाते हुए मुड़कर कहा, "चुकेंगे, या चुक रहे हैं ?"

ललिता समझ न सकी, देखती रह गई।

शेखरने कहा, "देख क्या रही हो, समझी नहीं ?"

ललिताने सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

"और भी जरा बड़ी होओ, तब समझोगी।" कहकर शेखर जूते पहनकर बाहर चला गया।

रातको शेखर एक कोचपर चुपचाप लेटा हुआ था, इतनेमें मा कमरेमें आ गई। वह झटपट उठके बैठ गया। मा एक चौकीपर बैठकर बोलीं, "लड़की कैसी है, देख आया रे ?"

शेखरकी माका नाम है भुवनेश्वरी। उम्र पचासके लगभग होगी। पर शरीरका ऐसा सुन्दर गठन है कि देखनेमें पैंतीस-छत्तीससे ज्यादाकी नहीं मालूम होतीं और उस सुन्दर आवरणके भीतर जो मातृ-हृदय था, वह और भी नवीन,—और भी कोमल था। वे गँवई-गाँवकी लड़की थीं, गाँवमें पैदा होकर वहीं बड़ी हुई थीं, मगर शहरमें भी एक दिनके लिए भी अशोभनीय नहीं मालूम हुईं। शहरकी चंचलता, सजीवता और आचार-व्यवहारको जैसे उन्होंने आसानीसे

अंगीकार कर लिया था, वैसे ही जन्मभूमिकी निविड़ निस्तब्धता और माधुर्यको भी उन्होंने खोया नहीं था। मा शेखरके लिए कितने गर्वकी वस्तु है, यह बात उसकी मा भी नहीं जानतीं। जगदीश्वरने शेखरको अनेक वस्तुएँ दी थीं। अनन्यसाधारण स्वास्थ्य, रूप, ऐश्वर्य, बुद्धि,—परन्तु इस जननीकी सन्तान हो सकनेके सौभाग्यको वह मन, वचन, कायसे भगवानका सबसे बड़ा दान समझता है।

माने कहा, "बहुत अच्छी कहकर चुप रह गया जो?"

शेखर फिर जरा हँसकर नीचेको निगाह करके बोला, "तुमने जो पूछा, सो ही तो बताया।"

मा हँस दीं। बोलीं, "कहाँ बताया? रंग कैसा है, गोरा? किसके समान है? अपनी ललिताके?"

शेखरने मुँह उठाकर कहा, "ललिता तो काली है मा,—उसकी अपेक्षा गोरा है।"

"मुँह-आँखें कैसी हैं?"

"बुरी नहीं।"

"तो कह दूँ तेरे बाबूजीसे?"

शेखर चुप हो गया।

मा क्षण-भर लड़केके चेहरेकी तरफ देखती रहनेके बाद सहसा पूछ उठीं, "क्यों रे, लड़की पढ़ी लिखी कैसी है?"

शेखरने कहा, "सो तो पूछा नहीं मा!"

अत्यन्त आश्चर्यमें आकर माने कहा, "पूछा क्यों नहीं रे? आजकल तुम लोगोंके लिए जो सबसे जरूरी बात है, सो ही तूने पूछी नहीं?"

शेखरने हँसकर कहा, "नहीं मा, इस बातकी मुझे याद ही नहीं रही।"

लड़केकी बात सुनकर अबकी बार वे अत्यन्त विस्मित होकर उसके चेहरेकी तरफ देखती रहीं, फिर हँसकर बोलीं, "तो मालूम होता है, तू वहाँ ब्याह करेगा नहीं।"

शेखर कुछ कहना चाहता था किन्तु उसी समय ललिताके आ जानेसे चुप रह गया। ललिता धीरेसे भुवनेश्वरीके पीछे आकर खड़ी हो गई। उन्होंने बायें हाथसे उसे सामनेकी तरफ खींचकर कहा, "क्या है बिटिया?"

ललिताने चुपके-से कहा, "कुछ नहीं मा!"

ललिता पहले भुवनेश्वरीको मौसीजी कहा करती थी, पर उन्होंने मना करके कहा था, 'मैं तो तेरी मौसी नहीं होती ललिता, मा होती हूँ।' तबसे वह उन्हें 'मा' कहती है। भुवनेश्वरीने उसे और भी छातीके पास खींचकर लाड़से कहा, "कुछ नहीं ? तो शायद मुझे सिर्फ एक बार देखने आई है, क्यों ?"

ललिता चुप रही।

शेखरने कहा, "देखने आई है, तो रसोई कब बनायेगी ?"

माने कहा, "रसोई क्यों बनायेगी ?"

शेखरने आश्चर्यके साथ पूछा, "तो फिर उनके यहाँ रसोई कौन बनायेगा मा ? इसके मामाने भी उस दिन कहा था, ललिता ही रसोई-वसोईका सब काम करती है।"

मा हँसने लगीं। बोलीं, "इसके मामाका क्या ठीक है, जो मुँहमें आया कह दिया। इसका अभी ब्याह नहीं हुआ, इसके हाथकी खायगा कौन ? अपनी मिसरानीको भेज दिया है, वही बनायेगी,—हमारे यहाँ बड़ी बहू बना रही है,—आजकल दोपहरको तो मैं उन्हींके यहाँ खाती हूँ।"

शेखर समझ गया कि माने इस दु खी परिवारका गुरु भार अपने ऊपर ले लिया है,—वह एक सन्तोषकी साँस लेकर चुप रह गया।

महीने-भर बाद एक दिन शामको शेखर अपने कमरेमें कोचपर अध-लेटी हालतमें पड़ा हुआ एक अँग्रेजीका उपन्यास पढ़ रहा था। काफी मन लगा हुआ था, इतनेमें ललिता कमरेमे आकर तकियेके नीचेसे चाबीका गुच्छा निकालकर आवाज करती हुई दराज खोलने लगी। शेखरने किताबपरसे निगाह बगैर हटाये ही कहा, "क्या है ?"

ललिताने कहा, "रुपये ले रही हूँ।"

शेखर "हूँ" कहकर पढ़ने लगा। ललिता आँचलमें रुपये बाँधकर उठ खड़ी हुई। आज वह सज-धजकर आई थी, उसकी इच्छा थी कि शेखर उसकी ओर देखे। बोली, "दस रुपये ले रही हूँ शेखर-भइया।"

शेखरने 'अच्छा' कह दिया, पर उसकी ओर देखा नहीं। लिहाजा और कोई उपाय न देख वह इधर-उधर चीज-वस्त धरने उठाने लगी, और इस तरह झूटमूठ ही देर करने लगी। मगर किसी भी तरह कोई नतीजा नहीं निकला, और तब वह धीरे धीरे बाहर चली गई। लेकिन बाहर चली जानेसे ही जा थोड़े ही सकती थी; फिर उसे दरवाजेके पास आकर खड़ा हो जाना पड़ा। आज और सबोंके साथ वह थियेटर देखने जायगी।

इतना वह जानती है कि शेखरकी बिना आज्ञाके वह कहीं भी जा नहीं सकती,—किसीने उसको यह बात बताई नहीं थी और न इस बातका उसके मनमें कभी कोई तर्क ही उठा कि क्यों और किस लिए, किन्तु जीवमात्रमें जो स्वाभाविक सहज बुद्धि है उसी बुद्धिने उसे सिखा दिया था। और कोई चाहे जो कर सकता है, चाहे जहाँ जा सकता है मगर वह नहीं कर सकती,—नहीं जा सकती। न तो वह स्वाधीन है और न मामा-माईकी आज्ञा ही उसके लिए काफी है। उसने दरवाजेकी ओटमेंसे धीरेसे कहा, "हम लोग थियेटर देखने जा रही हैं?"

उसका मृदु कंठस्वर शेखरके कान तक नहीं पहुँचा,—उसने कुछ जवाब नहीं दिया।

ललिताने फिर और जरा जोरसे कहा, "सब कोई मेरे लिए खड़ी हैं।"

अब शेखरने सुन लिया, किताबको एक तरफ रखकर पूछा, "क्या है?"

ललिताने जरा रूठकर कहा, "इतनी देरमें सुनाई दिया? हम लोग थियेटर देखने जा रही हैं।"

शेखरने कहा, "'हम लोग,' कौन कौन?"

"मैं, अन्नाकाली, चारुबाला, चारुबालाका भाई, उसके मामा—"

"मामा कौन हैं?"

ललिताने कहा, "उनका नाम है गिरीन बाबू। पाँच दिन हुए मुंगेरसे आये हैं, यहाँ बी० ए० पढ़ेंगे,—अच्छे आदमी हैं"

"वाह! नाम, धाम, पेशा,—मालूम होता है खूब परिचय हो गया है इसीसे चार-पाँच दिनोंसे सरकी चुटिया तक नहीं दिखाई दी,—शायद ताश खेला जा रहा होगा?"

सहसा शेखरके बात करनेका ढंग देखकर ललिता डर गई। उसने सोचा भी नहीं था कि ऐसा कोई प्रश्न उठ सकता है। वह चुप रही।

शेखरने कहा, "इधर कई दिनसे खूब ताश हो रहा था न?"

ललिताने घूँट-सा भरकर मृदु स्वरमें कहा, "चारुने कहा था?"

"चारुने कहा था, क्या कहा था?" कहकर शेखरने मुँह उठाकर देखा, फिर कहा, "अरे, एकदम कपड़े अपडे पहनकर तैयार होकर आना हुआ है! —अच्छा जाओ।"

ललिता गई नहीं, वहीं चुपचाप खड़ी रही।

बगलवाले मकानकी चारुबाला उसकी बराबरकी और सहेली है। वे लोग ब्राह्मसमाजी है। शेखर सिर्फ एक गिरीन्द्रको छोड़कर और सबको जानता है। गिरीन्द्र पाँच सात साल पहले कुछ दिनके लिए एक बार इधर आया था। इतने दिनोंसे बॉकीपुर पढ़ रहा था, फिर उसे कलकत्ते आनेकी जरूरत भी नहीं हुई, और न आया ही। इसीसे शेखर उसे पहचानता नहीं था। ललिताको फिर भी खड़ी देखकर उसने कहा, "झूठमूठको खड़ी क्यों हो, जाओ।" और अपनी किताब उठा ली।

पाँचेक मिनट चुपचाप खड़ी रहनेके बाद ललिताने धीरेसे पूछा, "जाऊँ?"

"जानेको कह तो दिया ललिता।"

शेखरका रुख देखकर ललिताका थियेटर देखनेका शौक जाता रहा, लेकिन उसके जाये बगैर भी नहीं बनता।

बात हो चुकी थी कि वह आधा खर्च देगी और चारुके मामा आधा खर्च करेंगे।

चारुके घर सब कोई उसके लिए अधीर होकर बाट देख रहे हैं, और ज्यों ज्यों देर हो रही है त्यों त्यों उनकी अधीरता भी बढ़ती जा रही है,—यह बात उसे साफ चौड़े दीख रही थी, लेकिन कोई उपाय उसे ढूँढ़े नहीं मिल रहा है। बगैर हुक्मके जाय, इतना साहस भी उसमें नहीं था। फिर दो-तीन मिनट चुप रहकर बोली, "सिर्फ आज-भरके लिए,—जाऊँ?"

शेखरने किताबको एक तरफ फेंककर धमकाते हुए कहा, "परेशान न करो ललिता, जानेकी तबीयत हो, जाओ, भलाई-बुराई समझने लायक तुम्हारी काफी उम्र हो चुकी है।"

ललिता चौंक पड़ी। शेखरकी डाँट-फटकार खाना उसके लिए नया नहीं है, इसका उसे अभ्यास भी था, मगर इधर दो-तीन सालके भीतर उसने ऐसी डाँट कभी नहीं सुनी। उधर उसकी मित्र-मंडली बाट देख रही है, वह खुद भी कपड़े पहनकर तैयार है, इस बीचमें रुपये लेने आई तो इस विपत्तिका सामना करना पड़ा। अब उन लोगोंके आगे वह क्या कहेगी?

कहीं जाने-आनेके बारेमें शेखरकी तरफसे उसे अबाध स्वाधीनता थी। उसी जोरसे वह बिलकुल कपड़े-अपड़े पहनकर तैयार होकर आई थी। अब उसकी वह स्वाधीनता ही इस तरह अप्रिय ढँगसे खर्च हुई हो सो बात नहीं, बल्कि जिस कारणसे ऐसा हुआ वह कारण इतना ज्यादा लज्जास्पद था कि आज तरह

सालकी उम्रमें पहले पहल उसका अनुभव करके वह अन्तरगसे मर मिटने लगी। मारे अभिमानके आँखोंमें आँसू भरकर वह और भी पाँचेक मिनट चुपचाप खड़ी रहकर आँखें पोंछती हुई चली गई। अपने घर जाकर उसने महरीसे अन्नाकालीको बुलवाकर उसके हाथमें दस रुपये देकर कहा, "आज तुम लोग चली जाओ काली, मेरी तबीयत खराब हो रही है,—सहेलीसे कह देना, मैं नहीं जा सकूँगी।"

कालीने पूछा, "तबीयत खराब है जीजी ?"

"सिरमें दर्द हो रहा है, जी मतला रहा है,—बहुत तबीयत खराब हो रही है।" कहकर वह बिस्तरपर एक करवटसे लेट रही। इसके बाद चारुने आकर मनाया-समझाया, जिद की, मामीसे सिफारिश करवाई,—मगर किसी भी तरह उसे राजी नहीं कर सकी।

अन्नाकाली हाथमें दस रुपये पाकर जानेके लिए छटपटा रही थी; कहीं इस झंझटमें जाना न हो सके इस डरसे चारुको अलग ले जाकर उसने रुपये दिखाते हुए कहा, "जीजीकी तबीयत खराब है, वे न जायँगीं तो क्या हुआ, चारु जीजी। मुझे रुपये दे दिये हैं, ये देखो,—चलो, हम लोग जायँ।" चारु समझ गई, अन्नाकाली उम्रमें छोटी होनेपर भी बुद्धिमें किसीसे कम नहीं। वह राजी होकर उसे साथ लेकर चली गई।

३

चारुबालाकी मा मनोरमाके लिए ताश खेलनेसे बढ़कर प्रिय वस्तु संसारमें और कोई नहीं थी। मगर खेलका नशा जितना था, दक्षता उतनी नहीं थी। उनकी यह त्रुटि दूर हो जाती थी ललिताको पाकर। वह बहुत अच्छा खेल जानती है। मनोरमाके ममेरे भाई गिरीन्द्रके आनेके बादसे इधर दोपहरको उनके घर खूब जोरोंसे ताशका खेल होता था। गिरीन्द्र मर्द ठहरा, अच्छा खेल जानता है, लिहाजा उसके विपक्षमें खेलनेके लिए मनोरमाको ललिता अवश्य चाहिए।

थियेटर देखनेके दूसरे दिन यथासमय ललिता जब मनोरमाके घर न पहुँची, तो उन्होंने उसे लिवा लानेके लिए महरी भेजी। ललिता उस समय एक मोटी कापीपर किसी अँग्रेजी किताबसे अनुवाद कर रही थी, वह नहीं गई।

उसकी सहेली भी आई, पर वह भी कुछ न कर सकी। अन्तमें मनोरमा

खुद आई और उसकी कापी-आपी एक तरफ फेंककर बोली, " चल, उठ। बड़ी होनेपर तुझे मजिस्ट्रेटी नहीं करनी है, ताश तो बल्कि खेलना भी पड़ेगा,—चल।"

ललिता भीतर ही भीतर बड़े संकटमें पड़ गई और रुआसी-सी होकर बोली, " आज तो किसी तरह जाना नहीं हो सकता, बल्कि कल आ जाऊँगी।" मनोरमाने एक न सुनी, अन्तमें उसकी मामीसे कहकर लिवा ही ले गई। इस तरह उसे आज भी जाकर गिरीन्द्रके विपक्षमें ताश खेलना पड़ा। मगर खेल जमा नहीं। वह उतना मन ही नहीं लगा सकी, जब तक बैठी अनमनी-सी रही, और जल्दी ही उठ खड़ी हुई। जाते समय गिरीन्द्रने कहा, " कल रातको आपने रुपये भिजवा दिये, मगर, गई नहीं ! कल फिर चलें।"

ललिताने सिर हिलाकर मृदु कंठसे कहा, " नहीं, मेरी तबीयत बड़ी खराब हो रही थी।"

गिरीन्द्रने हँसकर कहा, " अब तो तबीयत ठीक हो गई, चलिए, कल चला जाय।"

" नहीं नहीं, कल मुझे फुरसत नहीं मिलनेकी।" कहकर ललिता जल्दीसे चली गई। आज सिर्फ शेखरके डरसे ही उसका मन खेलमें नहीं लग रहा हो सो बात नहीं, उसे खुद भी बड़ी शरम आ रही थी।

शेखरके घरकी तरह इस घरमें भी उसका बचपनसे आना-जाना चला आ रहा है, और घरवालोंके सामने जैसे वह रहती है उसी तरह सबके सामने निकलती-बोलती रही है। इसीसे चारुके मामाके सामने भी उसे निकलने और बोलने-चालनेमें कोई संकोच नहीं था। परन्तु, आज गिरीन्द्रके सामने बैठकर खेलते समय शुरूसे अन्त तक उसे बराबर यही मालूम होता रहा कि इन कई दिनोंके परिचयमें ही गिरीन्द्र उसे जरा कुछ विशेष प्रीतिकी निगाहसे देखने लगा है। पुरुषकी प्रीतिकी निगाह इतनी बड़ी लज्जाकी बात है, इस बातकी उसने पहले कभी कल्पना भी नहीं की थी।

घरपर जरा देर दिखाई देनेके बाद ही वह झटपट शेखरके घर जाकर उसके कमरेमें पहुँच गई, और चटसे काममें लग गई। बचपनसे ही इस कमरेका छोटा-मोटा काम-काज उसीको करना पड़ता था। किताबें वगैरह उठाकर ठीकसे रखना, टेबिल सजा देना, दावात-कलम-कागज झाड़-पोंछकर ठीक ढंगसे रखना-धरना,—ये सब काम उसके बिना किये और कोई नहीं करता था। छह-सात दिनकी

लापरवाहीसे बहुत-सा काम जम गया था, उन सब त्रुटियोंको वह शेखरसे आनेके पहले ही दूर कर देनेके लिए कमर कसके लग गई।

ललिता भुवनेश्वरीसे मा कहती थी। समय पाते ही वह उनके पास रहा करती और वह खुद इस घरके किसीको गैर नहीं समझती थी, इसलिए और कोई भी उसे गैर नहीं समझता था। आठ सालकी उम्रमें ही मा-बापको खोकर उसने ननिहालमें प्रवेश किया था, तबसे वह छोटी बहनकी तरह शेखरके आस-पास घूम-फिरकर उससे पढ़ना लिखना सीखकर बड़ी हो रही है।

वह शेखरके स्नेहकी पात्री है, इस बातको सभी जानते थे। पर इस बातको कोई नहीं जानता था कि वह स्नेह अब कहाँ तक जा पहुँचा है और तो और ललिता तकको इस बातका पता नहीं था। बचपनसे ही सब कोई शेखरसे उसे एक ही तरहसे इतना ज्यादा लाड़-प्यार पाते देखते आये हैं कि आज तक उसका कोई भी लाड़-प्यार किसीका निगाहमें खटका नहीं है, और न इनका कभी कोई आचरण ही किसीकी निगाहपर चढ़ा है। इसीलिए, वह कभी किसी दिन इस घरमें बहूके रूपमें स्थान पा सकती है, ऐसी सम्भावना तक किसीके मनमें पैदा नहीं हुई।—न ललिताके घर और भुवनेश्वरीके मनमें।

ललिताने सोच रखा था कि काम खत्म करके शेखरके आनेसे पहले ही वह चली जायगी, परन्तु अन्यमनस्क होनेके कारण घड़ीकी तरफ उसका ध्यान ही नहीं गया। सहसा दरवाजेके बाहर जूतेकी मच-मच आवाज सुनकर मुँह उठाकर देखते ही वह एक तरफ हटके खड़ी हो गई।

शेखरने कमरेमें घुसते ही कहा, "आ गई! तो फिर कल लौटनेमें कितनी रात हुई थी?"

ललिताने कोई जवाब नहीं दिया।

शेखर एक गद्दीदार आराम-कुरसीपर सहारा लेकर लेट गया, बोला, "लौटी कब? दो बजे? या तीन बजे?—मुँहसे बात क्यों नहीं निकलती?"

ललिता उसी तरह चुपचाप खड़ी रही।

शेखर नाखुश होकर बोला, "नीचे जाओ, मा बुला रही हैं।"

भुवनेश्वरी भंडार घरके सामने बैठीं जल-पानकी तश्तरी लगा रही थीं। ललिता पास जाकर बोली, "मुझे बुला रही थीं मा?"

"नहीं तो" कहकर उन्होंने ललिताके चेहरेकी तरफ देखते ही कहा,

"चेहरा तेरा ऐसा सूखा-सा क्यों है ललिता ? कुछ खाया-पीया नहीं शायद अभी तक ?"

ललिताने सिर हिला दिया।

भुवनेश्वरीने कहा, "अच्छा जा, तू अपने भइयाको जल पान देकर मेरे पास आ।"

ललिता थोड़ी देरमें जल-पानकी तश्तरी हाथमें लिये ऊपर पहुँची, वहाँ देखा कि शेखर उसी तरह आँखें मीचे पड़ा है, आफिसके कपड़े तक नहीं बदले हैं, मुँह-हाथ भी नहीं धोया! पास जाकर उसने धीरेसे कहा, "जल-पान लाई हूँ।"

शेखरने उसकी तरफ देखा नहीं, बोला, "कहींपर रख जाओ।"

पर ललिताने तश्तरी रखी नहीं, हाथमें लिये हुए चुपचाप खड़ी रही।

शेखर बगैर देखे भी समझ रहा था कि ललिता गई नहीं है, खड़ी है। दो-तीन मिनट चुप रहकर बोला, "कब तक खड़ी रहोगी ललिता, मुझे अभी देर है, रखके नीचे जाओ।"

ललिता चुपचाप खड़ी खड़ी भीतर ही भीतर गुस्सा हो रही थी, मृदु-स्वरमें बोली, "होने दो देर, मुझे भी नीचे कोई काम नहीं।"

शेखर आँखें खोलकर हँसता हुआ बोला, "खैर, मुँहसे बात तो निकली। नीचे काम नहीं, घरमें तो होगा? और वहाँ भी न हो तो, उसके बगलवाले मकानमें होगा? कुछ एक घर तो तुम्हारा है नहीं ललिता?"

"हाँ, सो तो नहीं ही है!" कहकर मारे गुस्सेके ललिता जल-पानकी तश्तरी धमसे टेबिलपर रखकर दनदनाती हुई कमरेसे बाहर चली गई।

शेखरने चिल्लाकर कहा, "शामके बाद एक बार आना!"

"सौ-सौ बार मैं ऊपर-नीचे नहीं आ जा सकती।" कहकर ललिता चली गई।

नीचे पहुँचते ही माने कहा, "भइयाको जल-पान तो दे आई, पर पान तो दे ही नहीं आई?"

"मुझे भूख लगी है मा, मुझसे अब नहीं जाया जाता, और कोई दे आवे।" कहकर ललिता धप-से बैठ गई।

माने उसके रूठे हुए चेहरेकी तरफ देखकर हँसते हुए कहा, "अच्छा तो खाने बैठ, महरीसे भिजवाये देती हूँ।"

ललिता कुछ जवाब न देकर खाने बैठ गई। वह थियेटर देखने नहीं गई

फिर भी शेखरने उसे डाँटा, इस गुस्सेके कारण चार-पाँच दिन वह शेखरके सामने नहीं गई, और मजा यह कि शेखरके आफिस चले जानेके बाद उसके कमरेका काम वह सब कर दिया करती थी। शेखरने अपनी गलती समझ लेनेपर दो दिन उसे बुलवाया भी, पर वह गई नहीं।

४

इस मुहल्लेमें एक अत्यन्त वृद्ध भिखारी कभी कभी भीख माँगने आया करता था, उसपर ललिताकी बड़ी दया थी, आते ही वह उसे एक रुपया दे दिया करती थी। रुपया हाथ पड़ते ही वह बहुतसे अपूर्व और असम्भव आशीर्वाद दिया करता। उनका सुनना ललिताको बहुत ही अच्छा लगता। वह कहता, ललिता पहले जनममें उसकी मा थी और इस बातको वह ललिताको देखते ही समझ गया था। वह बूढ़ा लड़का उसका आज सबेरे ही दरवाजेपर आ पहुँचा और पुकारने लगा, "मेरी मा जननी कहाँ हो?"

सन्तानके आह्वानसे ललिता आज कुछ परेशानीमें पड़ गई। अभी शेखर कमरेमें है, वह रुपये लेने कैसे जाय? इधर उधर देखकर वह मामीके पास गई। मामी अभी हाल ही महरीको डाँट-फटकार कर नाखुश चेहरेसे रसोई बनाने बैठी थीं, उनसे वह कुछ कह नहीं सकी, और वापस आकर झाँककर देखा कि भिखारी दरवाजेके एक तरफ लाठी रखकर अच्छी तरह जमके बैठ गया है। इसके पहले ललिताने उसे कभी भी निराश नहीं किया, आज उसे खाली हाथ लौटा देनेमें उसका मन राजी नहीं हुआ।

भिखारीने फिर पुकारा।

अन्नाकाली दौड़ी आई और समाचार दिया, "जीजी, तुम्हारा वह बूढा लड़का आया है।"

ललिताने कहा, "काली, एक काम कर सकती है बहन? मैं काममें फँसी हुई हूँ, तू जरा दौड़ी चली जा, शेखर-भइयासे एक रुपया ले आ।"

काली दौड़ी गई और थोड़ी देर बाद उसी तरह दौड़ी आई, बोली, "यह लो।"

ललिताने पूछा, "शेखर-भइयाने क्या कहा री?"

"कुछ नहीं। मुझसे कहा, अचकनकी जेबसे रुपया निकाल ले, मैं निकाल लाई।"

" और कुछ नहीं कहा ?"

" नहीं, और कुछ नहीं कहा।" कहकर अन्नाकाली गरदन हिलाकर खेलने चली गई।

ललिताने भिखारीको दान देकर विदा किया; परन्तु और दिनकी तरह वह खड़ी रहकर उसकी वाक्य-छटा नहीं सुन सकी,—उसे कुछ अच्छा ही नहीं लगा।

इधर कई दिनोंसे उन लोगोंके यहाँ ताशकी बैठक खूब तेजीके साथ चल रही थी। आज दोपहरको ललिता वहाँ नहीं गई, सिर-दर्दका बहाना करके पड़ रही। आज सचमुच ही उसका मन बहुत खराब था। शामको उसने कालीको बुलाकर पूछा, " काली, तू पाठ लेने शेखर-भइयाके यहाँ जाती है ?"

कालीने सिर हिलाकर कहा, " हाँ, जाती तो हूँ।"

" मेरी बात शेखर-भइया कुछ नहीं पूछते ?"

" नहीं। हाँ-हाँ, परसों पूछ रहे थे : तुम दोपहरको ताश खेलने जाती हो या नहीं।"

ललिताने उद्विग्न हो पूछा, " तूने क्या कहा ?"

कालीने कहा, " मैंने कह दिया कि तुम दोपहरको चारु जीजीके यहाँ ताश खेलने जाती हो। शेखर-भइयाने कहा, कौन कौन खेलता है ? मैंने कहा, तुम और सहेली मा, चारु जीजी और उनके मामा।—अच्छा, तुम अच्छा खेलती हो या चारु-जीजीके मामा अच्छा खेलते हैं जीजी ? सहेली मा कहती हैं, तुम अच्छा खेलती हो, ठीक है न ?"

ललिताने उसकी बातका कुछ जवाब न देकर सहसा बहुत नाखुश होकर कहा, " तूने इतनी ज्यादा बातें क्यों कहीं ? सब बातोंमें तुझे दखल देना ही चाहिए, क्यों ? अब तुझे मैं कभी कोई चीज न दूँगी।" इतना कहकर वह गुस्सा होकर चल दी।

काली दंग रह गई। ललिताके इस आकस्मिक परिवर्तनका कुछ भी अर्थ नहीं समझ सकी।

मनोरमाके यहाँ दो दिनसे ताशका खेल बन्द है,—ललिता नहीं आती। ललिताको देखनेके बादसे गिरीन्द्र उसपर आकृष्ट हो गया है, इसका मनोरमाको पहलेसे ही सन्देह हो गया था; उसका वह सन्देह आज दृढ़ हो गया।

इधर दो दिनसे गिरीन्द्र जरा कुछ उत्सुक और अन्यमनस्क-सा हो गया था। शामको घूमने नहीं जाता, जब तब घरमें इधरसे उधर घूमा-फिरा करता है।

आज दोपहरको उसने मनोरमासे आकर कहा, "जीजी, आज भी खेल नहीं होगा?"

मनोरमाने कहा, "कैसे होगा गिरीन, खेलनेवाले कहाँ हैं? नहीं तो आ, हम लोग तीन जने ही खेलें।"

गिरीन्द्रने निरुत्साह होकर कहा, "तीन जनोंमें क्या खेल होगा जीजी? ललिताको क्यों नहीं बुलवा लेतीं!"

"वह नहीं आयेगी।"

गिरीन्द्रने उदास होकर पूछा, "क्यों नहीं आयेगी? उनके घरवालोंने मना कर दिया है क्या जीजी?"

मनोरमाने सिर हिलाकर कहा, "नहीं तो, उसके घरवाले तो ऐसे नहीं हैं,—वह खुद ही नहीं आती।"

गिरीन्द्रने सहसा खुश होकर कहा, "तो तुम्हारे खुद जानेसे वे आ जायँगी।" बात कह डालनेके बाद वह खुद ही मन ही मन अत्यन्त लज्जित-सा हो गया।

मनोरमा हँस दी। बोली, "अच्छी बात है, मैं ही जाती हूँ।" कहकर चली गई, और थोड़ी देर बाद ललिताको लाकर ताश खेलने बैठ गई।

दो दिनसे खेल हुआ नहीं था, इसलिए आज बहुत ही जल्दी खेल जम गया। ललिताकी तरफ जीत हो रही थी।

दो घंटे बाद सहसा काली आ खड़ी हुई, बोली, "जीजी, शेखर-भइया बुला रहे हैं, जल्दी!"

ललिताका चेहरा पीला पड़ गया, ताश बाँटना बन्द करके बोली, "शेखर-भइया आफिस नहीं गये?"

"क्या मालूम, फिर चले आये होंगे!" कहकर वह सिर हिलाती हुई चली गई।

ललिता ताश रखकर मनोरमाके चेहरेकी तरफ देखकर सकोचके साथ बोली, "जाती हूँ, सेहली मा!"

मनोरमाने व्यस्तताके साथ कहा, "सो क्यों री, और दो बाजी खेल जा!"

ललिता व्यस्तताके साथ उठ खड़ी हुई, बोली "नहीं सेहली मा, वे बहुत गुस्सा होंगे।" और जल्दी जल्दी कदम रखती हुई चली गई।

गिरीन्द्रने पूछा, "शेखर-भइया कौन हैं, जीजी?"

मनोरमाने कहा, "वह जो सामने फाटकवाला बड़ा मकान है, उसीमें रहते हैं।"

गिरीन्द्रने गरदन हिलाते हुए कहा, "अच्छा,—उस मकानके नवीन बाबू इनके रिश्तेदार होंगे।"

मनोरमाने लड़कीके मुँहकी तरफ देखकर मुसकराते हुए कहा, "रिश्तेदार कैसे! ललिताके उस रहनेके मकान तकको बुढ़ऊ हड़पनेकी फिकरमें हैं।"

गिरीन्द्र आश्चर्यके साथ देखता रह गया।

मनोरमा किस्सा बताने लगी—पिछले साल रुपयेके अभावमें गुरुचरण बाबूकी मझली लड़कीका ब्याह नहीं हो रहा था, अन्तमें बहुत ज्यादा ब्याजपर नवीन बाबूने मकान गिरवी रखकर रुपये उधार दिये थे। यह कर्ज कभी चुक नहीं सकता, और अन्तमें मकान नवीन बाबूका ही हो जायगा, इत्यादि।

मनोरमाने सारा किस्सा सुनाकर अन्तमें अपनी राय जाहिर की—बुढ़ऊकी आन्तरिक इच्छा है कि गुरुचरण बाबूका मकान तुड़वाकर वहाँ अपने छोटे लड़के शेखरके लिए बड़ा-सा मकान बनवायें। दोनों लड़कोंके लिए न्यारे-न्यारे मकान हो जायँगे,—इरादा बुरा नहीं है।

इतिहास सुनकर गिरीन्द्रको दुःख हो रहा था, उसने पूछा, "अच्छा जीजी, गुरुचरण बाबूके और भी तो लड़की हैं, उनका ब्याह कैसे करेंगे?"

मनोरमाने कहा, "अपनी तो हैं ही, उनके सिवा ललिता भी है। उसके मा-बाप नहीं हैं, इस साल उसका ब्याह होना ही चाहिए। उन लोगोंके समाजमें सहायता देनेवाला कोई नहीं, जात लेनेको सभी हैं,—उन लोगोंसे हम लोग अच्छे हैं गिरीन।"

गिरीन चुप हो रहा। मनोरमा कहने लगी, "उस दिन ललिताकी बात करते करते उसकी माई मेरे आगे रोने लगी थी,—कैसे उसका ब्याह होगा, कुछ ठीक नहीं,—उसकी फिकर करते करते गुरुचरणका अन्न-जल छूट रहा है। अच्छा गिरीन, मुंगेरमें तेरे मित्रोंमें कोई ऐसा नहीं जो सिर्फ लड़की देखकर ब्याह कर सके? ऐसी अच्छी लड़की मिलना दुस्वार है।"

गिरीन्द्र उदासीसे हँसता हुआ बोला, "मित्र-वित्र कहाँ हैं जीजी। मगर हाँ, रुपये पैसेसे मैं खुद जरूर सहायता कर सकता हूँ।"

गिरीन्द्रके पिता डाक्टरी करके बहुत-सा रुपया और जमीन-जायदाद छोड़ गये हैं, अब सबका मालिक गिरीन्द्र ही है।

मनोरमाने कहा, "रुपया तू उधार देगा ?"

"उधार क्या दूँगा जीजी,—चाहें तो वे चुका सकते हैं, नहीं तो न सही।"

मनोरमा अचम्भेमें पड़ गई। बोली, "रुपये देनेसे तुझे फायदा ? वे न तो हमारे रिश्तेदार ही हैं, और न समाजके,—ऐसे ही कोई किसीको रुपया देता है ?"

गिरीन्द्र अपनी बहनके मुँहकी ओर देखकर हँसने लगा, उसके बाद बोला, "समाजके आदमी न हुए तो क्या ? हैं तो अपने देशके ? उनका हाथ काफी तंग है, और मेरे पास रुपये मौजूद हैं।—तुम एक दफे पूछ देखो न जीजी, वे अगर लेनेको राजी हों, तो मैं दे सकता हूँ। ललिता उनकी भी कोई नहीं है, हमारी भी कोई नहीं है,—उसके ब्याहका सारा खर्च मैं ही दे दूँगा।

उसकी बात सुनकर मनोरमा विशेष सन्तुष्ट नहीं हुई। इसमें यद्यपि उसका अपना हानि-लाभ कुछ भी नहीं था, फिर भी, इतना रुपया एक आदमी किसी दूसरे आदमीको दे दे, इस बातको कोई भी स्त्री प्रसन्न चित्तसे स्वीकार नहीं कर सकती।

चारु अब तक चुप बैठी सब सुन रही थी, वह अत्यन्त प्रसन्न होकर उछल पड़ी, बोली, "हाँ मामा, दे दो, मैं सहेली-मासे कहे आती हूँ जाकर।"

पर उसकी माँने उसे डाँट दिया, "तू चुप रह चारु। लड़कियोंको इन सब बातोंमें न पड़ना चाहिए। कहना होगा तो मैं जाकर कह दूँगी।"

गिरीन्द्रने कहा, "हाँ, तुम्हीं कहना जीजी। परसों रास्तेमें खड़े खड़े गुरुचरण बाबूसे मेरी जरा बातचीत हुई थी,—बातचीतसे मालूम होता है बड़े सरल आदमी हैं, तुम क्या समझती हो जीजी ?"

मनोरमाने कहा, "मैं भी यही समझती हूँ और सब भी यही कहते हैं। वे स्त्री-पुरुष दोनों ही बड़े सीदे-साधे आदमी हैं। इसीसे तो दुःख होता है गिरीन, ऐसे आदमीको घर-द्वार छोड़कर निराश्रय होना पड़ेगा। इसका सबूत नहीं देखा तूने!—शेखर बाबू बुला रहे हैं, सुनते ही ललिता कैसी झटपट उठकर चल दी। घर-भर मानो उन लोगोंके हाथ बिक-सा गया है, मगर कितनी भी खुशामद क्यों न करे कोई, नवीन रायके फन्देमें जो एक बार पड़ चुका है वह बच जाय, यह उम्मेद कोई भी नहीं कर सकता।"

गिरीन्द्रने पूछा, "तो तुम कहोगी न जीजी ?"

"अच्छा, कहूँगी। रुपये देकर तू अगर उपकार कर सका तो अच्छा ही है।" कहकर जरा हँस दी, फिर बोली, "अच्छा, तुझे ऐसी क्या गरज पड़ी है गिरीन ?"

"गरज काहेकी जीजी, दुःख-कष्टमें परस्पर एक दूसरेकी सहायता करनी ही चाहिए।" कहता हुआ वह लज्जित-मुखसे बाहर चला गया। पर दरवाजेके बाहर जाकर फिर लौट आया और बैठ गया।

उसकी जीजीने कहा, "फिर बैठ गया जो ?"

गिरीन्द्रने हँसते हुए कहा, "इतना जो रोना रोया जीजी, सो सब झूठ भी तो हो सकता है ?"

मनोरमाने विस्मित होकर कहा, "क्यों ?"

गिरीन्द्र कहने लगा, "उनकी ललिता जिस कदर रुपये खर्च करती है, उससे तो मालूम होता है वह जरा भी दुःखी नहीं। उस दिन हम लोग थियेटर देखने गये थे तो वह खुद नहीं गई, मगर तो भी दस रुपये उसने अपनी बहनके हाथ भिजवा दिये। चारुसे पूछो न, कैसा खर्च करती है, महीनेमें बीस पचीस रुपयेसे कममें उसका अपना ही खर्च नहीं चलता।"

मनोरमाको विश्वास नहीं हुआ।

चारुने कहा, "सची मा। सब शेखर बाबूसे लेकर खर्च करती है। अबसे नहीं, छोटेपनसे ही वह बराबर शेखर-भइयाकी आलमारी खोलकर रुपये निकाल लाया करती है,—कोई कुछ नहीं कहता।"

मनोरमाने लड़कीकी तरफ देखकर सन्दिग्ध भावसे पूछा, "रुपये निकाल लाती है, शेखर बाबू जानते हैं ?"

चारुने सिर हिलाकर कहा, "जानते हैं। उनके सामने ही तो निकालती है। पिछले महीनेमें जो अन्नाकालीकी गुड़ियाका ब्याह हुआ था, उसमें रुपये किसने दिये थे ? सब तो सहेलीने दिये थे।"

मनोरमाने कुछ सोचकर कहा, "क्या जानें ! पर एक बात है, बुड्ढेके लड़के बाप जैसे कंजूस नहीं,—उन सबपर माका असर पड़ा है,—इसीसे उनमें दया-धर्म है। इसके सिवा ललिता लड़की भी बहुत अच्छी है, बचपनमें हमेशा साथ-साथ रही है, भइया भइया कहती आई है, इससे उसपर सबकी ममता हो गई है। अच्छा चारु, तू तो जाया-आया करती है, तुझे तो मालूम

होगा, अगले माहमें शेखरका ब्याह होनेवाला है न? सुना है, लड़कीवालेसे बुढ़ऊको काफी रुपया मिलेगा।"

चारुने कहा, "हाँ मा, अगले माघमें ही होगा,—सब पक्का हो गया है।

५

गुरुचरण उन आदमियोंमेंसे हैं जिनके साथ किसी भी उम्रका कोई भी आदमी बिना किसी सकोचके बातचीत कर सकता है। दो ही दिनकी बातचीतसे गिरीन्द्रके साथ उनकी स्थायी मित्रता-सी हो गई। गुरुचरणके चित्त या मनमें जरा भी दृढ़ता नहीं थी, लिहाजा, बहस करनेमें काफी दिलचस्पी होते हुए भी बहसमें हार जानेसे उन्हें जरा भी असन्तोष नहीं होता था।

गिरीन्द्रको उन्होंने शामके बाद चाय पीनेका निमत्रण दे रक्खा था। आफिससे लौटते लौटते दिन छिप जाया करता था। घर आकर मुँह-हाथ धोकर तुरत कहते, "ललिता, चाय तैयार हुई बिटिया? काली, जा जा, अपने गिरीन मामाको बुला ला जल्दीसे।" इसके बाद दोनों चाय पीते और बहस करते रहते।

ललिता किसी किसी दिन मामाकी आड़में बैठी चुपचाप सुना करती। उस दिन गिरीन्द्रकी युक्तियाँ सौगुनी बढ़कर निकला करतीं। अकसर आधुनिक समाजके विरुद्ध तर्क हुआ करता था। समाजकी हृदयहीनता, असगत उपद्रव और अत्याचार आदि सभी बातें हुआ करतीं।

पहले तो समर्थन करने योग्य वास्तवमें कुछ होता नहीं, उसपर गुरुचरणके उत्पीडित अशान्त हृदयके साथ गिरीन्द्रकी बातें मिल जातीं। वे अन्तमें गरदन हिलाकर कहते, "ठीक बात है गिरीन। किसकी इच्छा नहीं होती कि अपनी लड़कियोंको यथासमय अच्छी जगह ब्याह दें, मगर, दें कैसे? समाज कहता है: लड़कीकी उम्र हो चुकी, ब्याह कर दो, मगर ब्याहनेका इन्तजाम नहीं कर दे सकता। ठीक कहते हो गिरीन, मुझको ही देखो न, मकान तक गिरवी रख देना पड़ा, दो दिन बाद बाल-बच्चोंको लेकर राहका भिखारी बनना पड़ेगा,—समाज तब यह थोड़े ही कहेगा कि आओ, हमारे घर आश्रय लो! बताओ भला?"

गिरीन्द्र चुप रहता, गुरुचरण खुद ही कहते रहते, "बिलकुल ठीक बात है। ऐसे समाजसे तो जात जाना ही अच्छा। पेट भरे या भूखे रहें, शान्तिसे तो रह सकते हैं! जो समाज दु:खीका दुःख नहीं समझता, आफत-बिपतमें हिम्मत नहीं बँधाता वह समाज मेरा नहीं,—मुझ जैसे गरीबोंका नहीं है वह,—समाज

तो बड़े आदमियोंका है, अच्छा है, वे ही रहें समाजमें, हम लोगोंको जरूरत नहीं उसकी।" कहकर गुरुचरण सहसा चुप हो जाते।

इन युक्ति-तर्कोंको ललिता सिर्फ मन लगाकर सुनती ही न थी, बल्कि रातको बिछौनेमें पड़ी पड़ी जब तक नींद न आती तब तक उनपर अपने मनमें विचार करती रहती। हर एक बात उसके मनपर गम्भीरताके साथ मुद्रित होती रहती। वह मन ही मन कहती, "वास्तवमें गिरीन बाबूकी बातें अत्यन्त न्यायसगत हैं।"

मामासे उसका बहुत ज्यादा स्नेह था, उस मामाको अपने पक्षमें लेकर गिरीन्द्र जो भी कुछ कहता सब उसे अभ्रान्त सत्य मालूम होता। उसके मामा खासकर उसीके लिए इतने उद्विग्न हो उठे हैं, अन्न-जल तक उन्हें नहीं रुच रहा हैं,—उसके निर्विरोधी दुखी मामा, उसे आश्रय देकर ही तो इतना क्लेश पा रहे है! मगर क्यों? मामाकी जात क्यों जायगी? आज मेरा ब्याह हो जानेके बाद कल ही अगर मैं विधवा होकर घर लौट आऊँ, तब तो जात न जायगी! फिर इसमें भेद क्या है! गिरीन्द्रकी इन सब बातोंकी प्रतिध्वनि जो उसके भावातुर हृदयमें जाकर गूँजती रहती, उसे वह बाहर निकालकर उसपर अच्छी तरह विचार करती और विचार करते करते सो जाती।

उसके मामाके पक्षमें उनके दुःखको समझकर जो कोई बात करता, उसके मतसे अपना मत बगैर मिलाये ललिताके लिए और कोई रास्ता ही नहीं था। वह गिरीन्द्रपर आन्तरिक श्रद्धा करने लगी।

क्रमशः गुरुचरणकी तरह वह भी संध्याके चाय पानके समयके लिए प्रतीक्षा करने लगी।

पहले गिरीन्द्र ललिताको 'आप' कहा करता था। गुरुचरणने एक दिन कहा, "उसे 'आप' क्यों कहते हो गिरीन, 'तुम,' कहा करो।" तबसे उसने ललिताको 'तुम' कहना शुरू कर दिया है।

एक दिन गिरीनने उससे पूछा, "तुम चाय नहीं पीतीं ललिता?"

ललिताके मुँह नीचा करके सिर हिलानेपर गुरुचरणने कहा, "उसके शेखर-भइयाकी मनाही है। लड़कियोंका चाय पीना उसे अच्छा नहीं लगता।"

कारण सुनकर गिरीन प्रसन्न नहीं हो सका। ललिता इस बातको समझ गई।

आज शनिवार है। और दिनोंकी अपेक्षा इस दिनकी बैठक उठनेमें जरा ज्यादा देर होती थी।

चाय पीना खत्म हो चुका था। गुरुचरण आज आलोचनामें खूब उत्साहके साथ भाग नहीं ले रहे थे, बीच-बीचमें अन्यमनस्क हो जाते थे।

गिरीन्द्र इस बातको सहज ही ताड गया, बोला, "आज आपकी तबीयत शायद अच्छी नहीं है?"

गुरुचरणने मुँहसे हुक्का हटाते हुए कहा, "क्यों? तबीयत तो ठीक ही है।"

गिरीन्द्रने सकोचके साथ कहा, "तो आफिसमें क्या कुछ—

"नहीं, सो कोई बात नहीं!" कहकर गुरुचरणने कुछ आश्चर्यके साथ गिरीन्द्रके चेहरेकी तरफ देखा। उनके भीतरका उद्वेग बाहर प्रकट हो रहा था, इस बातको वह अत्यन्त सरल प्रकृतिका आदमी समझ ही न सका।

ललिता पहले बिलकुल चुप रहा करती थी, परन्तु अब बीच-बीचमें दो-एक बात बोल भी दिया करती है। उसने कहा, "हाँ मामा, आज तुम्हारा मन शायद अच्छा नहीं है।"

गुरुचरण हँसते हुए उठ बैठे, बोले, "अच्छा, यह बात है! हाँ बिटिया, ठीक कहती है तू, आज मेरा मन सचमुच ही अच्छा नहीं है।"

ललिता और गिरीन्द्र दोनों उनके चेहरेकी तरफ देखते रहे।

गुरुचरणने कहा, "नवीन भइयाने सब कुछ जानते हुए भी कुछ कड़ी कड़ी बातें रास्तेमें खडे खडे सुना दीं। और उनको भी इसमें क्या दोष दूँ? छह महीने हो गये, एक पैसा भी ब्याजका नहीं दे सका, असल तो दूर रहा।"

बातको समझकर ललिता उसे दबा देनेके लिए व्यस्त हो उठी। उसके अदूरदर्शी मामा कहीं घरकी सब बातें दूसरेके आगे कह न बैठें, इस डरसे ललिता झटपट कह उठी, "तुम कुछ फिकर मत करो मामा, बादमें सब ठीक हो जायगा।"

परन्तु गुरुचरण उधरसे गये ही नहीं, बल्कि उदासीके साथ हँसकर कहने लगे, "बादमें क्या ठीक हो जायगा बिटिया? असलमें बात यह है गिरीन, मेरी बिटिया चाहती है कि उसका यह बूढ़ा मामा कुछ सोच-फिकर न करे, निश्चिन्त रहे। मगर, बाहरके लोग तो तेरे दुखी मामाके दुःखकी तरफ देखना ही नहीं चाहते, ललिता!"

गिरीन्द्रने पूछा, "नवीन बाबूने आज क्या कहा था?"

ललिता नहीं जानती थी कि गिरीन्द्रको सब बातें मालूम हैं। वह इसीसे उसके प्रश्नको असंगत कुतूहल समझकर मन ही मन अत्यन्त क्रुद्ध हो उठी।

गुरुचरणने सब बातें खुलासा कह दीं। नवीन रायकी स्त्री बहुत दिनोंसे अजीर्ण रोगसे कष्ट पा रही हैं, फिलहाल रोग कुछ बढ़ जानेसे चिकित्सकोंने वायु-परिवर्तनके लिए कहा है। इसलिए उन्हें रुपयोंकी जरूरत है, लिहाजा इस समय गुरुचरणको आज तकका पूरा ब्याज और कुछ असल रुपये भी देने होंगे।

गिरीन्द्र कुछ देर स्थिर रहकर धीरेसे बोला, "एक बात आपसे कई दिनसे कहने कहनेको हूँ, पर कह नहीं पाया, अगर कुछ खयाल न करें तो आज कह दूँ।"

गुरुचरण हँस दिये, बोले, "मुझसे तो कोई बात कहनेमें कभी कोई सकुचाता नहीं गिरीन, क्या बात है?"

गिरीन्द्रने कहा, "जीजीसे सुना है कि नवीन बाबू ब्याज बहुत ज्यादा लेते हैं, और मेरे बहुत रुपये यों ही पड़े रहते हैं,—किसी काम नहीं आते। और नवीन बाबूको रुपयोंकी जरूरत भी है, इससे मेरा कहना है कि न हो तो उनके रुपये आप चुका ही दें।"

ललिता और गुरुचरण दोनों आश्चर्य-चकित होकर उसकी तरफ देखने लगे। गिरीन्द्र अत्यन्त संकोचके साथ कहने लगा, "मुझे अभी तो रुपयोंकी कोई खास जरूरत नहीं, इसलिए कहता हूँ कि आपको जब सहूलियत हो दे दीजिएगा,—उन लोगोंको जरूरत है, दे दें तो अच्छा है, अगर—"

गुरुचरणने धीरेसे पूछा, "सब रुपये तुम दे दोगे?"

गिरीन्द्रने मुँह नीचा करके कहा, "हाँ हाँ, इस वक्त उनका काम निकल जायेगा—"

गुरुचरण उत्तरमें कुछ कहना ही चाहते थे, इतनेमें अन्नाकाली दौड़ी चली आई। बोली, "जीजी, जीजी, जल्दी, जल्दी,—शेखर-भइयाने कपड़े पहननेको कहा है,—थियेटर देखने जाना होगा।" कहकर वह जैसे आई थी वैसे ही भाग गई। उसकी व्यग्रता देखकर गुरुचरण हँस दिये। ललिता स्थिर होकर बैठी रही।

अन्नाकाली दूसरे ही क्षण वापस आकर बोली, "कहाँ, उठीं तो नहीं जीजी, हम सब तुम्हारे लिए खड़े हैं!"

फिर भी ललिताके उठनेके कोई लक्षण नहीं दिखाई दिये। वह आखिर तक सुन जाना चाहती थी, किन्तु, गुरुचरणने कालीके मुँहकी तरफ देखकर मुसकराते हुए ललिताके माथेपर हाथ रखकर कहा, "तू जा बिटिया, देर मत कर,—तेरे लिए सब बाट देख रहे हैं।"

आखिर ललिताको उठना ही पड़ा। परन्तु, जानेके पहले उसने गिरीन्द्रको

चेहरेकी तरफ कृतज्ञ दृष्टि डाली और धीरेसे बाहर चली गई : यह बात गिरीन्द्रसे छिपी न रही।

दसेएक मिनट बाद कपड़े पहनकर, तैयार होके, वह पान देनेके बहाने और एक बार बैठकमें आई।

गिरीन्द्र चला गया। अकेले गुरुचरण मोटे तकियेपर सिर रक्खे अकेले लेटे हुए हैं, और उनकी मुँदी हुई दोनों आँखोंके किनारोंसे आँसू बह रहे हैं। ये आनन्दाश्रु हैं, इस बातको ललिता समझ गई। समझ जानेके कारण ही उसने उनके ध्यानमें व्याघात नहीं पहुँचाया,—जैसे चुपकेसे आई थी वैसे ही चुपचाप वापस चली गई।

थोड़ी देर बाद जब वह शेखरके घर पहुँची, तब, उसकी आँखोंमें भी आँसू भर आये थे। काली थी नहीं। वह सबसे पहले गाड़ीमें जा बैठी थी। शेखर अकेला अपने कमरेमें चुपचाप खड़ा खड़ा शायद उसीकी बाट देख रहा था। ललिताके पहुँचनेपर उसने मुँह उठाकर उसकी आँसू-भारी आँखोंकी तरफ देखा।

वह आठ-दस दिनसे ललिताको देख न पानेके कारण मन ही मन बहुत नाराज हो रहा था, परन्तु, अब उस बातको वह भूल गया और उद्विग्न होकर पूछने लगा, "यह क्या, रो रही हो क्या?"

ललिताने सिर झुकाकर जोरसे गरदन हिला दी।

इधर कई दिनोंसे ललिताको बिलकुल न देखनेसे शेखरके मनमें एक तरहका परिवर्तन हो रहा था, इसीसे वह पास आकर दोनों हाथोंसे सहसा ललिताका मुँह उठाकर बोल उठा, "सचमुच रो रही हो तुम तो! क्या हुआ?"

ललितासे अब अपनेको सम्हाला न गया। वह वहाँकी वहीं बैठकर आँचलसे मुँह ढकके रो दी।

६

नवीन रायने मय ब्याजके पूरे रुपये पाई पाई गिन लेनेके बाद रहनका रुक्का वापस करते हुए कहा, "आखिर रुपये दिये किसने, बताओ भी तो?"

गुरुचरणने नम्रताके साथ कहा, "सो मत पूछिए भइया, किसीसे कहनेको मना कर दिया है।"

रुपये वापस पाकर नवीन बाबू जरा भी सन्तुष्ट नहीं हुए। न तो उन्हें इसकी आशा ही थी और न इच्छा, बल्कि यह मकान तुड़वाकर किस ढगका नया बनवायेंगे यही सोच रहे थे। उन्होने व्यग कसकर कहा, "सो अब तो मनाही

होगी ही भाई, साहब, दोष तुम्हारा नहीं, दोष है मेरा। रुपया वापस माँगना ही कसूर हुआ, आखिर कलिकाल जो ठहरा!"

गुरुचरणने अत्यन्त व्यथित होकर कहा, "ऐसा क्यों कहते हो भइया! आपके रुपयोंका कर्ज चुकाया है, लेकिन आपकी कृपाका ऋण थोड़े ही चुक सकता है।"

नवीन हँस दिये। वे अनुभवी आदमी ठहरे, इन सब बातोंपर विश्वास करते होते तो गुड़ बेचकर इतने रुपये न कमा सकते। बोले, "सचमुच ही अगर ऐसा सोचते भाई साहब, तो इस तरह रुपये नहीं चुका देते। मान लिया कि एक बार रुपये माँगे थे, सो भी तुम्हारी भाभीके लिए,—अपने लिए नहीं,—खैर, यह तो बताओ, कितने ब्याजपर गिरवी रक्खा है मकान?"

गुरुचरणने गरदन हिलाकर कहा, "गिरवी नहीं रखा,—ब्याजके बारेमें भी कुछ बातचीत नहीं हुई।"

नवीन बाबूको विश्वास नहीं हुआ, उन्होंने कहा, "कहते क्या हो, यों ही?"

"हाँ भइया, एक तरहसे यों ही समझो। लड़का बड़ा अच्छा है, बड़ा दयावान् है।"

"लड़का?—लड़का कौन?"

गुरुचरणने इस प्रश्नका कोई जवाब नहीं दिया, चुप रहे।—जितना कह डाला उतना कहना भी उचित नहीं था।

नवीन उनके मनकी बातको ताड़ कर मन ही मन मुसकराते हुए बोले, "जब कि कहनेकी मनाई है तो जरूरत नहीं कहनेकी। मगर संसारमें बहुत कुछ देखा है मैंने, इसलिए सावधान किये देता हूँ तुम्हें, वे चाहे कोई भी हों, इतनी भलाई करते करते कहीं जालमें न फँसा लें!"

गुरुचरणने इस बातका कोई जवाब नहीं दिया, कागज हाथमें लेकर सीधे घर लौट आये।

प्रायः हरसाल इन्हीं दिनों भुवनेश्वरी कुछ दिनके लिए पश्चिमकी तरफ घूमने चली जाया करती हैं। उन्हें अजीर्णकी शिकायत रहा करती है, और इससे उन्हें लाभ होता है। रोग इतना ज्यादा नहीं था जितना नवीनने स्वार्थ-साधनके लिए गुरुचरणसे बढ़ाकर कहा था। खैर कुछ भी हो, यात्राकी तैयारियाँ होने लगीं।

उस दिन शामके वक्त एक चमड़ेके सूट-केसमें शेखर अपनी जरूरी शौकीनीकी चीजें सजाकर रख रहा था।

अन्नाकालीने कमरेमें आकर कहा, "शेखर भइया, तुम लोग कल जाओगे न?"

शेखर सूट-केसपरसे मुँह उठाकर बोला, " काली, तू अपनी जीजीको भेज दे, क्या क्या साथमें ले जायगी, अभीसे पहुँचा दे। "

ललिता हर साल माके साथ जाती है, इस साल भी जायगी,—यही शेखरको मालूम था।

कालीने गरदन हिलाकर कहा, " जीजी तो जायगी नहीं। "

" क्यों नहीं जायगी ? "

कालीने कहा, " वाह, कैसे जायगी ! माघ फागुनमें उसका व्याह जो होगा, बाबूजी दूल्हा ढूँढ़ रहे हैं। "

शेखर निर्निमेष दृष्टिसे सन्न होकर उसकी तरफ देखता रह गया।

कालीने घरमें जो कुछ सुना था, उत्साहके साथ सब कहने लगी, " गिरीन बाबूने कहा है, जितने भी रुपये लगें हम देंगे, अच्छा वर चाहिए। बाबूजी आज भी आफिस नहीं जायँगे, खा-पीकर कहीं वर देखने जायँगे। गिरीन बाबू भी साथ रहेंगे। "

शेखर चुपचाप बैठा सुनता रहा, और ललिता क्यों नहीं आती, इसका भी कारण कुछ कुछ उसे मालूम हो गया।

काली कहने लगी, " गिरीन बाबू बड़े अच्छे आदमी हैं, शेखर-भइया ! मझली जीजीके ब्याहके वक्त बाबूजीने मकान गिरवी रक्खा था न ताऊजीके पास, सो बाबूजी कह रहे थे कि दो-तीन महीने बाद हम सबको राहका भिखारी हो जाना पड़ता,—इसीसे गिरीन बाबूने रुपये दे दिये हैं। कल बाबूजीने सब रुपये ताऊजीको वापस दे दिये हैं। जीजी कह रही थी कि अब हम लोगोंको किसी बातका डर नहीं, ठीक है न शेखर भइया ? "

उत्तरमें शेखर कुछ भी नहीं कह सका, उसी तरह एकटक देखता रहा।

कालीने पूछा, " क्या सोच रहे हो शेखर भइया ? "

अब शेखरका ध्यान भग हुआ, जल्दीसे बोल उठा, " कुछ नहीं। काली, अपनी जीजीको जरा जल्दीसे भेज तो दो, कहना, मैं बुला रहा हूँ, जा, दौड़ी जा। "

काली दौड़ी चली गई।

शेखर खुले हुए सूट-केसकी तरफ एकटक देखता हुआ चुपचाप बैठा रहा। किस चीजकी जरूरत है, किसकी नहीं,—उसकी आँखोंके सामने सब एकाकार हो गया।

बुलाहट सुनकर ललिताने ऊपर आकर खिड़कीमेंसे झाँककर देखा : उसके

शेखर भइया जमीनपर एकटक नीचेको निगाह किये चुपचाप बैठे हैं। उसने उसके चेहरेका ऐसा भाव पहले कभी नहीं देखा। ललिता आश्चर्यमें पड़ गई और डर गई। धीरे धीरे पास पहुँचनेपर शेखर "आओ" कहकर व्यस्तताके साथ उठ खड़ा हुआ।

ललिताने आहिस्तेसे पूछा, "मुझे बुलाया था?"

"हाँ", कहकर शेखर क्षण-भर मौन रहा, फिर बोला, "कल सबेरेकी गाड़ीसे मैं माके साथ पश्चिम घूमने जा रहा हूँ, अबकी बार लौटनेमें शायद देरी होगी। यह लो चाबी, तुम्हारे खर्चके लिए रुपये पैसे जो आवश्यक हो सब उस दराजमें हैं।"

हर बार ललिता भी साथ जाती है। पिछले साथ इस मौकेपर उसने कितने आनन्दसे चीज-वस्त सम्हालकर रक्खी थी! अबकी बार वह काम शेखर भइयाको अकेले करना पड़ रहा है,—खुले सूट-केसकी तरफ देखते ही ललिताको उस बातकी याद आ गई।

शेखरने ललिताकी तरफसे मुँह फेरकर, एक बार खाँसकर गला साफ करके कहा, "सावधानीसे रहना,—और अगर कभी कोई खास जरूरत पड़े, तो भइयासे पता लेकर मुझे चिट्ठी लिख भेजना।"

इसके बाद दोनों चुप रहे। अबकी बार ललिता साथ नहीं जायगी, शेखरको यह बात मालूम हो गई है और उसका कारण भी शायद मालूम हो गया होगा : इस बातका खयाल करके ललिता मारे लज्जाके गड़ गड़ जाने लगी।

सहसा शेखरने कहा, "अच्छा, अब जाओ, मुझे अभी सब सामान सम्हालकर रखना है। अबेर हो गई है, आज एक दफे आफिस भी जाना है।"

ललिता खुले हुए सूट-केसके सामने घुटने टेककर बैठ गई और बोली, "तुम नहाओ जाकर, मैं सम्हाले देती हूँ।"

"तब तो अच्छा ही हो।" कहकर शेखर चाबियोंका गुच्छा ललिताके आगे फेंककर कमरेके बाहर जाकर सहसा ठिठकके खड़ा हो गया और बोला, "मुझे किन किन चीजोंकी जरूरत पड़ती है, भूल तो नहीं गई हो?"

ललिता सिर झुकाये सूट-केसकी चीजें देखने लगी, कुछ जवाब नहीं दिया।

शेखरने नीचे जाकर मासे पूछकर मालूम किया कि कालीकी सारी बातें सच हैं। गुरुचरणने कर्जा चुका दिया है, यह बात भी सच है; और ललिताके लिए लड़का ढूँढ़नेकी विशेष कोशिश हो रही है, यह भी सच है। वह और कुछ न पूछकर नहाने चला गया।

करीब दो घंटे बाद नहा-धोकर और खा-पीकर आफिसकी पोशाक पहनने जब वह ऊपर अपने कमरेमें घुसा तो सचमुच ही अवाक् हो गया।

इन दो घंटोंके भीतर ललिताने कुछ भी नहीं किया था, वह सूट-केसके ढक्कनपर सिर रखकर चुपचाप बैठी थी। शेखरके पैरोंकी आहटसे वह चौंक पड़ी और उसने मुँह उठाकर तुरन्त ही सिर झुका लिया। उसकी दोनों आँखें जवाकुसुम जैसी लाल-सुर्ख हो रही थीं।

मगर, शेखरने उसे देखकर भी अनदेखा कर दिया, उसने आफिसकी पोशाक पहनते हुए स्वाभाविक भावसे कहा, "अभी तुमसे होगा नहीं ललिता, दोपहरको आकर सम्हाल देना।" और वह तैयार होके आफिस चला गया। वह ललिताकी सुर्ख आँखोंका कारण अच्छी तरह समझ गया था, परन्तु सब तरह खूब अच्छी तरहसे विचार किये बगैर उसे कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ।

उस दिन शामके वक्त मामाको चाय देने गई तो ललिता सहसा सिकुड़-सी गई। आज शेखर बैठा था। वह गुरुचरणके पास बिदा लेने आया था।

ललिताने सिर झुकाये हुए दो प्याला चाय बनाकर गिरीन और अपने मामाके सामने रख दी, इसपर गिरीनने कहा, "शेखर बाबूको चाय नहीं दी ललिता?"

ललिताने सिर झुकाये हुए ही आहिस्तेसे कहा, "शेखर भइया चाय नहीं पीते।" गिरीनने और कुछ नहीं कहा। ललिताकी चाय न पीनेकी बात उसे याद आ गई। शेखर खुद चाय नहीं पीता, और दूसरा कोई पीये, यह भी नहीं चाहता।

चायका प्याला हाथमें लेकर गुरुचरणने लड़केकी बात छेड़ दी, लड़का बी० ए० में पढ़ रहा है, इत्यादि। बहुत तारीफ करनेके बाद उन्होंने कहा, "फिर भी हमारे गिरीनको पसन्द नहीं आता। हाँ, इतना जरूर है कि लड़का देखनेमें उतना सुन्दर नहीं है; मगर, मर्दोंका रूप किस काम आता है, गुण होना चाहिए,—इतना ही काफी है।"

कहनेका साराश यह कि किसी कदर ब्याह हो जाय तो उनकी जानमें जान आये।

शेखरके साथ गिरीनका अभी अभी मामूली-सा परिचय हुआ था। शेखरने उसकी तरफ देख जरा हँसकर कहा, "गिरीन बाबूको पसन्द क्यों नहीं आया? लड़का पढ़ रहा है, अवस्था भी अच्छी है,—यही तो लक्षण है सुपात्रका।"

शेखरने पूछा तो जरूर, पर वह ठीक समझ गया था कि गिरीनको क्यों

पसन्द नहीं और क्यों भविष्यमें और कोई भी पसन्द न आयेगा। परन्तु, गिरीन्द्र सहसा कुछ जवाब न दे सका, उसके चेहरेपर सुर्खी आ गई और शेखर इस बातको ताड़ भी गया। वह उठकर खड़ा हो गया, बोला, "चाचाजी, मैं तो कल माको लेकर पश्चिम घूमने जा रहा हूँ, ठीक वक्तपर खबर देना न भूल जाइएगा।"

गुरुचरणने कहा, "ऐसा क्यों कहते हो बेटा, तुम्हीं लोग तो हमारे सब कुछ हो। इसके सिवा, ललिताकी माके बिना मौजूद रहे कोई काम भी तो नहीं हो सकता। क्यों बिटिया, है कि नहीं?" कहकर हँसते हुए मुड़े तो देखा ललिता है ही नहीं, बोले, "उठके चली कब गई?"

शेखरने कहा, "बात छिड़ते ही भाग गई।"

गुरुचरणने गम्भीरताके साथ कहा, "भाग तो जायगी ही,—आखिर कुछ भी हो, समझ तो आ ही गई है!" कहते कहते छोटी-सी एक उसास छोड़कर बोले, "बिटिया मेरी लक्ष्मी-सरस्वती दोनों है। ऐसी लड़की बड़े भाग्यसे मिलती है शेखर—!" बात कहते कहते उनके शीर्ण कृश चेहरेपर गम्भीर स्नेहकी ऐसी एक स्निग्ध मधुर छाया आ पड़ी कि गिरीन और शेखर दोनों ही आन्तरिक श्रद्धाके साथ उन्हें मन ही मन नमस्कार किये बगैर न रह सके।

७

चायकी मजलिससे चुपचाप भाग आकर ललिता शेखरके कमरेमें घुसकर गैस-बत्तीके उज्ज्वल प्रकाशमें एक बॉक्स रखकर शेखरके गरम कपड़े सम्हाल सम्हाल कर रख रही थी, शेखरके प्रवेश करनेपर ललिताने जो उसके चेहरेकी तरफ देखा तो वह भय और विस्मयसे दंग हो रही।

मुकद्दमेमें सर्वस्व खोकर आदमी जैसी शकल लेकर अदालतसे बाहर निकलता है, और सबेरेके उस आदमीको शामको पहचानना जैसे मुश्किल हो जाता है,—इस एक घंटेके अन्दर ठीक उसी तरह शेखरको ललिता मानो ठीकसे पहचान नहीं सकी। उसके चेहरेपर सर्वस्व गँवा देनेका चिह्न मानो जलते लोहेसे किसीने छाप दिया हो! शेखरने शुष्क कंठसे पूछा, "क्या हो रहा है ललिता?"

ललिता उसकी बातका कोई जवाब न देकर पास आकर अपने दोनों हाथोंमें उसका एक हाथ लेती हुई रुआसी-सी होकर बोली, "क्या हुआ है शेखर भइया?"

"कहाँ, कुछ तो नहीं हुआ!" कहकर जबर्दस्ती जरा हँस दिया। ललिताके

हाथके स्पर्शसे उसके चेहरेपर कुछ कुछ सजीवता लौट आई। उसने पासकी एक चौकीपर बैठकर कहा, " तुम क्या कर रही हो ? "

ललिताने कहा, " मोटा ओवर कोट रखना भूल गई थी, उसे रखने आई हूँ।" शेखर सुनने लगा और तब और भी जरा स्वस्थ होकर वह कहने लगी, "पिछली बार रेलमें तुम्हें बड़ी तकलीफ हुई थी, बड़े कोट तो कई थे, पर खूब मोटा एक भी नहीं था। इससे मैंने वापस आकर तुम्हारे उस कोटका माप देकर दर्जीसे यह बनवा रक्खा था।" कहकर उसने एक भारी-भरकम कोट उठाकर शेखरके आगे रख दिया।

शेखरने उसे हाथमें उठाकर देखा, और कहा, " कब, मुझसे तो तुमने कहा ही नहीं कभी ! "

ललिताने हँसकर कहा, " तुम 'बाबू' आदमी ठहरे, कहनेसे तुम इतना मोटा कोट बनवाने देते ? इसीसे नहीं कहा; बनवाकर रख दिया था।" और उसे यथास्थान रख दिया, फिर कहा, " ऊपर ही रक्खा है, खोलते ही मिल जायगा, जाड़ा लगनेपर पहन लेना, आलस मत करना, समझे ! "

" अच्छा।" कहकर शेखर निर्निमेष दृष्टिसे कुछ देर तक उसकी तरफ देखता रहा, फिर सहसा कह उठा, " नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।"

" क्या नहीं हो सकता ? पहनोगे नहीं ? "

शेखरने जल्दीसे कहा, " नहीं, सो बात नहीं,—दूसरी बात है।—अच्छा ललिता, जानती हो माकी चीज-वस्त सब सम्हल चुकी या नहीं ? "

ललिताने कहा, " जानती हूँ, दोपहरको मैंने ही सब सम्हालकर रख दिया है।" और वह फिरसे एक बार सब चीजोंकी सम्हाल करके ताला लगाने लगी।

शेखरने कुछ देर तक चुपचाप उसकी तरफ देखते हुए पूछा, " क्यों ललिता, अगले साल मेरी हालत क्या होगी, जानती हो ? "

ललिताने आँख उठाकर कहा, " क्यों ? "

" क्यों, सो तो मैं ही जानता हूँ।" कहकर तुरत ही अपनी बातको दबा देनेकी गरजसे उसने अपने सूखे चेहरेपर जबरन प्रसन्नता खींच लाकर कहा, " पराये घर जानेके पहले, कहाँ क्या है, क्या नहीं है,—सब मुझे बता जाना, नहीं तो जरूरतके वक्त कोई चीज ढूँढ़े न मिलेगी।"

ललिता गुस्सा होकर बोली, " हटो, जाओ—

शेखरको अब जरा हँसी आ गई, बोला, " हटना जाना तो है ही, पर, सच बताओ, मेरा कैसे क्या होगा ? शौक तो मुझे सोलहो आना पूरा है पर ताकत कौडी-भर भी नहीं,—ये सब काम नौकरसे भी होनेके नहीं। अबसे, देखता हूँ कि तुम्हारे मामा जैसा बनना पडेगा,—एक धोती, एक दुपट्टा,—फिर जो होगा सो देखा जायगा। "

ललिता चाबियोंका गुच्छा जमीनपर पटककर भाग गई।

शेखरने चिल्लाकर कहा, " कल सबेरे आना एक दफे। "

ललिताने सुनकर भी नहीं सुना, जल्दी जल्दी सीढ़ी तय करके नीचे उतर गई।

घर जाकर देखा कि छतपर एक कोनेमें चाँदनीमें बैठी अन्नाकाली बहुतसे गेंदाके फूल लिये माला गूँथ रही है। ललिता उसके पास जाकर बैठ गई, बोली, " ओसमें बैठी क्या कर रही है काली ? "

कालीने बगैर सिर उठाये ही कहा, " माला गूँथ रही हूँ, आज रातको मेरी लड़कीका ब्याह है। "

" कब, मुझसे तो कहा नहीं तूने ! "

" पहलेसे कोई ठीक नहीं था। बाबूजीने अभी अभी पत्रा देखकर कहा था कि आज रातके सिवा इस महीनेमें ब्याहकी कोई लगन नहीं निकलती। लड़की बड़ी हो गई है, अब रखी नहीं जा सकती, जैसे हो वैसे बिदा करनी है।—जीजी, दो रुपये दो न, कुछ मीठा मँगवा लूँ। "

ललिताने हँसकर कहा, "रुपयेके वक्त जीजी, क्यों ?—जा, मेरे तकियेके नीचे रक्खे हैं, ले आ जाकर। और क्यों री काली, गेंदा-फूलसे क्या ब्याह होता है ?"

कालीने गभीर भावसे कहा, " होता है। और कोई फूल न मिले तो हो सकता है। मैंने कितनी ही लड़कियाँ पार की हैं जीजी ! मै सब जानती हूँ। " कहकर वह मीठा मँगवानेके लिए नीचे चली गई।

ललिता वहीं बैठी माला गूँथने लगी।

थोड़ी देर बाद कालीने लौटकर कहा, " और सबसे कह दिया गया है सिर्फ शेखर-भइयासे नहीं कहा गया,—जाऊँ, कह आऊँ, नहीं तो वे बुरा मानेंगे। " और वह शेखरके घर चली गई।

काली पक्की गृहिणी है, सब काम वह सिलसिलेसे करती है। शेखर भइयाने" कहकर वह नीचे उतर आई और बोली, " वे एक माला मँगा रहे हैं। जाओ

न जीजी, जल्दीसे जाकर दे आओ, मैं तब तक इधरका इन्तजाम कर डालूँ,—लग्न शुरू हो गई है, अब वक्त नहीं है।"

ललिताने सिर हिलाकर कहा, "मैं नहीं जा सकूँगी, तू दे आ काली!"

"अच्छा जाती हूँ, वह बड़ी माला दो मुझे।" कहकर कालीने अपना हाथ बढ़ा दिया।

ललिता माला उठाकर दे ही रही थी कि उसके कुछ मनमें आई, बोली, "अच्छा, मैं ही दिये आती हूँ।"

ललिताने गम्भीरताके साथ कहा, "अच्छा, तुम्हीं चली जाओ जीजी, मुझे बहुत काम है,—मरनेकी फुरसत नहीं।"

उसके चेहरेका भाव और बात करनेका ढंग देखकर ललिताको हँसी आ गई। "एकदम बड़ी-बूढ़ी हो गई है!" कहकर हँसती हुई वह माला लेकर चली गई। किवाड़के पास पहुँच कर उसने देखा कि शेखर दत्तचित्त होकर चिट्ठी लिख रहा है। वह दरवाजा खोलकर पीछे आ खड़ी हुई, फिर भी शेखरको मालूम नहीं हुआ। तब, कुछ देर चुप रहकर, शेखरको चौंका देनेके अभिप्रायसे उसने सावधानीसे शेखरके गलेमें माला डाल दी और चटसे पीछेकी चौकीपर जा बैठी।

शेखर पहले तो चौंककर बोला, "काली!" फिर दूसरे ही क्षण मुँह फेरकर देखा तो अत्यन्त गम्भीरताके साथ बोला, "यह क्या किया ललिता!"

ललिता उठ खड़ी हुई और शेखरके चेहरेके भावसे कुछ शंकित होकर बोली, "क्यों, क्या हुआ?"

शेखरने पूरी मात्रामें गम्भीरता कायम रखते हुए कहा, "जानती नहीं, क्या हुआ? कालीसे जाकर पूछ आओ, आजकी रात गलेमें माला पहना देनेसे क्या होता है!"

अब ललिता समझ गई। लहमे-भरमें उसका सारा चेहरा मारे लज्जाके सुर्ख हो उठा, वह "सो नहीं, कभी नहीं, कभी नहीं।" कहती हुई दौड़कर कमरेसे बाहर निकल गई।

शेखरने बुलाकर कहा, "जाओ मत ललिता, सुन जाओ,—जरूरी काम है तुमसे—"

शेखरकी आवाज उसके कानमें जरूर गई, पर वह सुनने क्यों लगी?—कहीं भी वह रुक नहीं सकी, सीधी अपने कमरेमें जाकर आँख मीचके अपने बिस्तरपर पड़ रही।

पिछले पाँच-छह सालसे वह शेखरके घनिष्ठ सम्पर्कमें रहकर इतनी बड़ी हुई है, परन्तु, उसने कभी ऐसी बात नहीं सुनी। एक तो गम्भीर प्रकृतिका शेखर कभी मज़ाक़ नहीं करता, और करे भी तो इस बातकी वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि ऐसी शरमकी बात उसके मुँहसे निकलेगी,—लज्जासे संकुचित होकर बीसेक मिनट पड़ी रहनेके बाद वह उठकर बैठ गई। असलमें शेखरसे वह भीतर ही भीतर डरती भी थी, इसलिए, जब कि उसने 'जरूरी काम है' कहा है, तो विचार करने लगी जाय कि वह या नहीं। इतनेमें उस घरकी महरीकी आवाज सुनाई दी, "ललिता जीजी कहा हैं, छोटे बाबू बुला रहे हैं जरा—"

ललिताने बाहर आकर मृदु स्वरमें कहा, "मैं आ रही हूँ, तुम जाओ।"

ऊपर पहुँचकर उसने किवाड़की सँधमेंसे देखा: शेखर अभी तक चिठ्ठी ही लिख रहा है। कुछ देर चुप रहकर उसने धीरेसे कहा, "क्या है?"

शेखरने लिखते लिखते कहा, "पास आओ, बताता हूँ।"

"नहीं, वहींसे बताओ।"

शेखर मन ही मन हँसकर बोला, "सहसा तुमने यह क्या कर डाला, बताओ तो?"

ललिता रूठे स्वरमें बोली, "हटो, फिर वही!"

शेखरने उसकी तरफ मुँह फेरकर कहा, "मेरा क्या कसूर है? तुम्हीं तो कर गईं।—"

"कुछ नहीं किया मैंने,—तुम उसे लौटा दो।"

शेखरने कहा, "इसीलिए तो बुलवा भेजा था, ललिता। पास आओ, लौटाये देता हूँ। तुम आधा काम कर गई हो, इधर आओ, मैं उसे पूरा कर दूँ।"

ललिता दरवाजेके पास क्षण-भर चुपचाप खड़ी रही, फिर बोली, "मैं सच कहती हूँ तुमसे, ऐसी मजाककी बातें करोगे तो फिर कभी तुम्हारे सामने न आऊँगी।—कहे देती हूँ, माला लौटा दो मुझे।"

शेखरने टेबिलकी तरफ मुँह करके माला उठाकर कहा, "ले जाओ।"

"तुम वहींसे फेंक दो।"

शेखरने सिर हिलाकर कहा, "बगैर पास आये नहीं मिल सकती।"

"तो, मुझे जरूरत नहीं उसकी।" कहकर ललिता गुस्सा होकर चली गई।

शेखरने चिल्लाकर कहा, "लेकिन आधा काम होकर जो रह गया।"

"रहा तो रहने दो।" कहकर ललिता वास्तवमें गुस्सा होकर चली गई।

वह चली जरूर गई, पर नीचे नहीं गई। पूरबकी तरफकी खुली छतपर एक किनारे जाकर रेलिंग पकड़े चुपचाप खड़ी रही। उस समय सामने आकाशमें चाँद उठ रहा था और शीतकी पाण्डुर चाँदनी चारों ओर छिटक रही थी। ऊपर स्वच्छ निर्मल नील आकाश था। वह एक बार शेखरके कमरेकी तरफ नजर डालकर ऊपरकी ओर देखती रही। अब तो उसकी आँखें जलने लगीं और मारे लज्जा और अभिमानके आँसू आ गये। वह इतनी छोटी नहीं है कि इन सब बातोंका मतलब पूरी तरहसे न समझ सके, फिर क्यों उसके साथ ऐसा मर्मान्तिक उपहास किया गया! इस बातको समझने लायक उसकी उम्र भी काफी हो चुकी है कि वह कितनी तुच्छ है, कितनी नीचे है।—वह अच्छी तरह जानती है कि अनाथ और निराश्रय होनेके कारण ही उससे सब कोई स्नेह और प्यार करते हैं,—शेखर भी करता है, उसकी मा भी करती हैं। उसका अपना कहनेको कोई नहीं है। उसका वास्तविक दायित्व किसीपर निर्भर न होनेसे ही गिरीन्द्र बिलकुल गैर आदमी होकर भी उसका उद्धार कर देनेकी बात छेड़ सका है।

ललिता आँखें मीचकर मन ही मन कहने लगी. इस कलकत्तेके समाजमें उसके मामाकी अवस्था शेखरके घरानेसे कितनी नीची है! और वह उन्हीं मामाकी आश्रिता है भार-स्वरूपा! उधर बराबरके घरानेसे शेखरके ब्याहकी बातचीत हो रही है। दो दिन पहले हो या पीछे, उस घरमें उसका ब्याह होगा ही। इस ब्याहमें नवीन राय कितने रुपये वसूल करेंगे, सो सब बातें भी वह शेखरकी माके मुँहसे सुन चुकी है।

फिर, शेखर उसे क्यों सहसा आज इस तरह अपमानित कर बैठा? ये सब बातें ललिता सामनेकी ओर शून्य दृष्टिसे देखती हुई मन ही मन सोच रही थी कि इतनेमें सहसा चौंककर उसने पीछे मुड़कर देखा: शेखर चुपचाप खड़ा हुआ मुसकरा रहा है और इसके पहले जिस ढंगसे उसने शेखरके गलेमें माला पहना दी थी, ठीक उसी तरीकेसे वही गेंदाकी माला उसके गलेमें वापस लौट आई है! रुआईके मारे उसका गला रुक-सा आया, फिर भी उसने जोरसे विकृत स्वरमें कहा, "क्यों ऐसा किया?"

"तुमने क्यों किया?"

"मैंने कुछ नहीं किया।" इतना कहकर उसने मालाको तोड़कर फेंक देनेके लिए हाथ उठाया ही था कि सहसा शेखरकी आँखोंकी तरफ देखकर वह

ठिठक कर रह गई,—तोड़ फेंकनेकी उसे हिम्मत ही न हुई। रोती हुई बोली, "मेरे कोई नहीं है, इसीसे क्या तुम मेरा इस तरह अपमान कर रहे हो!"

शेखर अब तक मन्द मन्द मुसकरा रहा था, ललिताकी बात सुनकर वह अवाक् रह गया,—यह तो नादान बच्चीकी बात नहीं है। बोला, "मैं अपमान कर रहा हूँ, या तुम मेरा अपमान कर रही हो?"

ललिता आँखें पोंछकर डरती हुई बोली, "मैंने क्या अपमान किया?"

शेखर क्षण-भर स्थिर रहकर स्वाभाविक भावसे बोला, "अब जरा विचार कर देखोगी तो मालूम हो जायगा। आजकल तुम बहुत ज्यादती कर रही थीं ललिता, विदेश जानेके पहले मैंने उसे बन्द कर दिया है।" और वह चुप हो गया।

ललिताने फिर कोई जवाब नहीं दिया, सिर झुकाये खड़ी रही। परिपूर्ण ज्योत्स्नाके नीचे दोनों जने स्तब्ध होकर खड़े रहे। सिर्फ, नीचेसे कालीकी लड़कीके ब्याहकी शंख-ध्वनि बार बार सुनाई दे रही थी।

कुछ देर मौन रहकर शेखरने कहा, "अब ओसमें मत खड़ी रहो, जाओ, नीचे जाओ।"

"जाती हूँ।" कहकर इतनी देर बाद ललिताने उसके पैरों पड़कर प्रणाम किया और उठके खड़ी होकर धीरेसे कहा, "मुझे क्या करना होगा, बता जाओ।"

शेखर हँस दिया। पहले तो जरा दुविधामें पड़ गया, फिर दोनों हाथ बढ़ाकर अपनी छातीके पास खींचकर उसके अधरोंपर अपने अधर छुआता हुआ बोला, "कुछ भी बता जाना नहीं होगा ललिता, आजसे तुम अपने आप ही समझने लगोगी।"

ललिताका सारा शरीर रोमांचित होकर सिहर उठा, वह तुरन्त ही हटके खड़ी होकर बोली, "मैंने अचानक तुम्हारे गलेमें माला डाल दी, इसीसे क्या तुमने ऐसा किया?"

शेखरने हँसकर सिर हिलाते हुए कहा, "नहीं। मैं बहुत दिनोंसे सोच रहा हूँ, पर तय नहीं कर पाता था। आज तय कर लिया, क्योंकि आज ही ठीकसे समझ सका हूँ कि तुम्हारे बगैर मैं रह नहीं सकूँगा।"

ललिताने कहा, "मगर तुम्हारे बाबूजी सुनेंगे तो बहुत नाराज होंगे, मा सुनेंगी तो दुःखित होंगी,—यह हो नहीं सकता शे—"

"बाबूजी सुनेंगे तो गुस्सा होंगे, यह ठीक है; पर मा बहुत खुश होंगी। खैर इसकी कोई बात नहीं, जाने दो, जो होना था सो हो गया,—अब न तो

तुम ही लौटा सकती हो और न मैं ही। जाओ, नीचे जाकर माको प्रणाम कर आओ।"

८

तीनेक महीने बाद एक दिन गुरुचरण उदास चेहरा लिये नवीन रायके कमरेमें घुसकर फर्शपर बैठना ही चाहता था कि नवीन बाबूने चिल्लाकर मना करते हुए कहा, "नहीं, नहीं, नहीं, यहाँ नहीं, उस चौकीपर जाकर बैठो। मुझसे ऐसे बेवक्त नहाया नहीं जायगा,—क्यों जी, तुमने जात दे ही दी?"

गुरुचरण दूर एक चौकीपर सिर झुकाकर बैठ गया। चारेक दिन पहले वह नियमानुसार दीक्षा लेकर ब्राह्म हो गया है, आज यही समाचार नाना वर्णोंसे चित्रित होकर कट्टर हिन्दू नवीनके कर्णगोचर हुआ है। नवीनकी आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं, परन्तु गुरुचरण उसी तरह चुपचाप सिर झुकाये बैठा रहा। उसने किसीसे कुछ पूछे ताछे बिना ही यह काम कर डाला था, इससे उसके घरमें भी रोने-झींकनेकी और अशान्तिकी सीमा न थी।

नवीन राय फिर गरज उठे, "बताओ न जी, सच है क्या?"

गुरुचरणने आँसू-भरी आँखें उठाकर कहा, "जी हाँ, सच है।"

"क्यों ऐसा काम कर डाला? तुम्हारी तनख्वाह तो सिर्फ साठ रुपये है, तुम—" मारे क्रोधके नवीन रायके मुँहसे बात नहीं निकली।

गुरुचरणने आँखें पोंछकर रुके हुए गलेको साफ करके कहा, "ज्ञान नहीं था भइया। दुःखोंके मारे गलेमें फाँसी लगाकर मरूँ या ब्रह्मसमाजी हो जाऊँ, कुछ समझमें नहीं आ रहा था उस समय। अन्तमें सोचा कि आत्मघाती न होकर ब्रह्मसमाजी हो जाऊँ।—इसीसे ब्रह्मसमाजी हो गया।"

गुरुचरण आँखें पोंछता हुआ बाहर चला गया।

नवीन चिल्लाकर कहने लगे, "अच्छा किया, अपने गलेमें फाँसी न लगाकर जातके गलेमें फाँसी डाल दी। अच्छा जाओ, अबसे हम लोगोंके सामने अपना यह काला मुँह न दिखाना, अब जो लोग मन्त्री बने हुए हैं, उन्हींके साथ रहना। लड़कियोंको डोम-चमारोंके घर ब्याहो जाकर।" कहकर उन्होंने गुरुचरणको बिदा करके मुँह फेर लिया।

नवीन मारे क्रोध और अभिमानके कुछ तय नहीं कर सके क्या करें। गुरुचरण उनके हाथसे बिलकुल ही निकल गया और जल्दी हाथ आनेका भी नहीं,—इसीसे निष्फल क्रोधसे वे फड़फड़ाने लगे। और, फिलहाल गुरुचरणको

और किसी तरह तंग करनेकी तरकीब न सूझनेके कारण राजको बुलाकर उन्होंने छतपर दीवार उठवा दी जिससे जाने-आनेका रास्ता बन्द हो जाय।

प्रवासमें बहुत दूर बैठे भुवनेश्वरीने जब यह समाचार सुना तो वे रो दीं। लड़केसे बोलीं, "शेखर, ऐसी मति किसने दी उन्हें?"

मति-बुद्धि किसने दी, शेखरने इसका निश्चित अनुमान कर लिया था, परन्तु उसका उल्लेख न करके कहा, "मगर मा, दो-चार दिन बाद तुम्हीं लोग तो उन्हें जातसे छेककर अलग कर देतीं! इतनी लड़कियोंका ब्याह भला वे कैसे करते, मेरी तो कुछ समझमें ही नहीं आता?"

भुवनेश्वरीने सिर हिलाते हुए कहा, "कुछ भी रुका नहीं रहता शेखर; और, केवल इसके लिए ही अगर जात देनी होती, तो बहुतोंको दे देनी पड़ती। भगवानने जिन्हें संसारमें भेजा है, उनका भार अपने ही ऊपर रक्खा है।"

शेखर चुप रहा, भुवनेश्वरी आँखें पोंछती हुई कहने लगीं, "ललिता बिटियाको अगर साथ ले आती तो जैसे भी होता उसका किनारा मुझे ही करना पड़ता, और करती भी। पर मैं तो जानती नहीं थी कि गुरुचरणने इसी अभिप्रायसे उसे नहीं भेजा। मैं तो जानती थी कि सचमुच ही उसकी सगाई होनेवाली है।"

शेखर माके चेहरेकी तरफ देखकर जरा कुछ शरमिन्दा-सा होकर बोला, "ठीक तो है मा, अब घर चलकर ऐसा ही करना।" वह तो खुद ब्राह्मसमाजी हुई नहीं है,—उसके मामा हुए हैं।—और सच पूछो तो, वे भी कोई उसके अपने नहीं होते। ललिताके और कोई है नहीं, इसीसे उनके घर पल रही है।"

भुवनेश्वरीने सोच विचारकर कहा, "सो तो ठीक है, लेकिन तुम्हारे बाबूजीका मिजाज दूसरा है, वे किसी भी कदर राजी नहीं होंगे। ऐसा भी हो सकता है कि उन लोगोंके साथ मिलने-जुलने तक न दें।"

शेखरके मनमें भी इस बातकी काफी आशंका थी, वह और कुछ नहीं बोला, अन्यत्र चला गया।

इसके बाद फिर एक मिनटके लिए भी उसे विदेशमें रहनेकी इच्छा नहीं रही; दो तीन दिन चिन्तित और अप्रसन्न चेहरेसे इधर उधर घूम फिरकर एक दिन शामको मासे जाकर बोला, "अब अच्छा नहीं लगता मा, चलो, घर चलें।"

भुवनेश्वरीने उसी वक्त सहमत होकर कहा, "अच्छी बात है, चल शेखर, मुझे भी अब यहाँ अच्छा नहीं लगता।"

घर लौटकर माता-पुत्र दोनोंने ही देखा कि छतपर जाने-आनेका नहीं रास्ता

था, वहाँ दीवार उठा दी गई है। यह बात मा-बेटे बिना कुछ पूछे-ताछे ही समझ गये कि गुरुचरणके साथ किसी तरहका सम्बन्ध रखना,—यहाँ तक कि मुँहसे बातचीत करना भी नवीन रायको नहीं रुचेगा।

रातको शेखरके जीमते वक्त मा मौजूद थीं, उन्होंने दो-एक बात करनेके बाद कहा, "मालूम होता है कि ललिताकी सगाई तो गिरीन बाबूके साथ ही हो रही है। मैं पहलेसे ही समझती थी।"

शेखरने मुँह बगैर उठाये ही पूछा, "किसने कहा?"

"उसकी मामीने। दोपहरको तेरे बाबूजी सो गये थे तब मैं खुद उसके घर मिलने गई थी। तबसे उसने तो रो-रोकर आँख-मुँह सब फुला लिया है।" क्षण-भर चुप रहकर उन्होंने आँचलसे अपनी आँखें पोंछकर कहा, "तकदीर है तकदीर, शेखर! भाग्यका लिखा कोई मेट नहीं सकता,—किसे दोष दिया जाय, बता? खैर, तो भी गिरीन लड़का अच्छा है, पैसा भी पास है, ललिताको तकलीफ नहीं होगी।" कहकर वे चुप हो गईं।

उत्तरमें शेखरने कुछ कहा नहीं, सिर झुकाये हुए थालीकी चीजें इधर-उधर करने लगा। थोड़ी देर बाद माके उठ जानेपर वह भी उठा और हाथ-मुँह धोकर बिस्तरपर जाकर पड़ रहा।

दूसरे दिन शामके बाद जरा टहल आनेके लिए वह सड़कपर निकला था। उस समय गुरुचरणकी बाहरवाली बैठकमें दैनिक चाय-पान-सभा बैठी हुई थी, और काफी उत्साहके साथ हँसी-मजाक और बातचीत चल रही थी। वहाँका शोर-गुल कानमें पड़ते ही शेखरने स्थिर होकर कुछ सोचा और फिर धीरे धीरे आगे बढ़कर उस शब्दका अनुसरण करता हुआ वह गुरुचरणकी बाहरवाली बैठकमें पहुँच गया। उसके पहुँचते ही उसी क्षण शोर-गुल थम गया और उसके चेहरेकी तरफ देखकर सबके चेहरेका भाव बदल गया।

यह बात ललिताके सिवा और किसीको मालूम नहीं थी कि शेखर लौट आया है। आज गिरीन्द्रके सिवा और भी एक सज्जन मौजूद थे। वे विस्मित मुखसे शेखरकी ओर देखने लगे। गिरीन्द्रका चेहरा अत्यन्त गम्भीर हो गया, वह दीवारकी तरफ देखने लगा। सबसे ज्यादा चिल्ला रहे थे गुरुचरण खुद, उनका चेहरा भी एकबारगी पीला पड़ गया। ललिता उनके पास बैठी हुई चाय बना रही थी, उसने एक बार मुँह उठाकर झुका लिया।

शेखरने आगे बढकर तख्तपर सिर छुआकर प्रणाम किया और एक किनारे बैठकर हँसता हुआ बोला, " वाह, यह कैसी बात है,—एकदम ही सब शान्त हो गये ! "

गुरुचरणने धीमे स्वरमें शायद आशीर्वाद दिया; पर क्या कहा, सो समझमें नहीं आया।

उनके मनका भाव शेखर समझ गया, इसीसे सम्हलनेका समय देनेके लिए उसने खुद ही बात छेड़ी। कल सबेरेकी गाडीसे आनेकी बात, माके रोग शान्त होनेकी बात, पश्चिमकी आबहवाकी बात तथा और भी अनेकानेक समाचार वह अनर्गल सुनाता चला गया, और अन्तमें उस अपरिचित युवकके मुँहकी ओर देखकर चुप हो गया।

गुरुचरणने अबतक अपनेको बहुत कुछ सम्हाल लिया था, उस लड़केका परिचय देते हुए कहा, "ये अपने गिरीनके मित्र हैं। एक ही जगह घर है, एक साथ पढ़े हैं, बहुत ही अच्छे योग्य हैं। श्यामबाजार रहते हैं, फिर भी हम लोगोंके साथ परिचय होनेके बादसे अक्सर आकर भेंट कर जाते हैं। "

शेखर गरदन हिलाता हुआ मन ही मन कहने लगा, ' हाँ बहुत ही अच्छा, बहुत ही योग्य है। ' कुछ देर चुप रहकर बोला, " चाचाजी, और सब खबर तो अच्छी है ? "

गुरुचरणने जवाब नहीं दिया, सिर झुकाये चुपचाप बैठे रहे, शेखरको उठते देख सहसा रुआसे कंठसे बोल उठे, " बीच-बीचमें आ जाया करो बेटा, एकदम छोड मत देना।—सब बात सुन तो ली होगी ? "

" हाँ, सुनी क्यों नहीं। " कहकर शेखर घरके भीतर चला गया।

दूसरे ही क्षण भीतरसे गुरुचरणकी स्त्रीके रोनेकी आवाज आने लगी, बाहर बैठे गुरुचरण नीचेको मुँह किये धोतीके छोरसे अपनी आँखोंके आँसू पोंछने लगे और गिरीन्द्र अपराधीकी तरह मुँह बनाकर खिड़कीसे बाहरकी देखता हुआ चुपचाप बैठा रहा। ललिता पहले ही उठके चली गई थी।

कुछ देर बाद शेखर रसोईघरसे निकलकर बरामदेको पार करके आँगनमें उतर रहा था, इतनेमें देखा कि अँधेरेमें किवाड़की ओटमें ललिता खड़ी है। उसने जमीनसे सिर लगाकर प्रणाम किया, और उठके खड़ी हो गई। उसका मुँह शेखरकी बिलकुल छातीके पास पहुँच गया। वह क्षण-भर चुपचाप खड़ी न जाने क्या आशा करती रही, फिर पीछे हटकर चुपकेसे बोली, " मेरी चिट्ठीका जवाब क्यों नहीं दिया ? "

" कब, मुझे तो कोई चिट्ठी नहीं मिली,—क्या लिखा था ? "

ललिताने कहा, " बहुत-सी बातें। खैर जाने दो उसे। सब बातें सुन तो ली हैं, अब तुम्हारी क्या आज्ञा है, सो बताओ। "

शेखरने आश्चर्य-भरे स्वरमें कहा, " मेरी आज्ञा! मेरी आज्ञासे क्या होगा ?"

ललिता शंकित होकर उसके मुँहकी तरफ देखती हुई बोली, " क्यों ? "

" और नहीं तो क्या ललिता! मैं किसको आज्ञा दूँगा ? "

" मुझे, और किसे दे सकते हो ? "

" तुम्हें भी क्यों देने लगा ? और दूँ भी तो तुम सुनने क्यों लगीं ? " शेखरका कंठ गम्भीर और कुछ करुण हो गया।

अब तो ललिता मन ही मन और भी डर गई और फिर एक बार बिलकुल पास आकर रुआँसे कंठसे बोली, " जाओ,—इस समय तुम्हारी हँसी अच्छी नहीं लगती। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, क्या होगा बताओ, मारे डरके मुझे रातको नींद तक नहीं आती ? "

" डर किस बातका ? "

" तुम खूब हो! डर नहीं होगा ? तुम पास नहीं थे, मा भी नहीं थीं, बीचमें मामा न जाने क्या कर बैठे। अब, मा अगर मुझे अपने घरमें न लें तो ?"

शेखर क्षण-भर चुप रहकर बोला, " सो तो ठीक है, मा नहीं लेना चाहेंगी। तुम्हारे मामाने दूसरोंसे रुपये लिये हैं,—ये सब बातें उन्हें मालूम हो गई हैं। इसके सिवा अब तुम हो गई ब्राह्मसमाजी और हम लोग हैं हिन्दू! "

अन्नाकालीने इसी समय रसोई-घरसे पुकारा, " जीजी, मा बुला रही हैं। "

ललिताने चिल्लाकर कहा, " आती हूँ। " फिर स्वर धीमा करके कहा, " मामा कुछ भी हों,—पर जो तुम हो सो मैं हूँ। मा अगर तुम्हें नहीं छोड़ सकतीं तो मुझे भी न छोड़ेंगीं। और रही गिरीन बाबूसे रुपये लेनेकी बात, सो उनके रुपये वापस कर दिये जायँगे। दूसरे, कर्जका रुपया चाहे दो दिन पहले हो या पीछे, देना तो पड़ेगा ही। "

शेखरने पूछा, " इतने रुपये पाओगी कहाँसे ? "

ललिता शेखरके चेहरेकी तरफ एक बार आँख उठाकर क्षण-भर चुप रहकर बोली, "जानते नहीं, औरतोंको रुपये कहाँसे मिलते हैं ? मुझे भी वहींसे मिलेंगे।"

अब तक शेखर संयमके साथ बातचीत करता हुआ भी भीतर ही भीतर जल रहा था, अब व्यंग-भरे शब्दोंमें बोला, "लेकिन, मामाने तुम्हें बेच जो दिया है ? "

ललिता अँधेरेमे शेखरके चेहरेका भाव न देख सकी परन्तु कंठ-स्वरका परिवर्तन उसे मालूम हो गया। उसने भी दृढ स्वरमें जवाब दिया, "यह सब झूठी बात है। मेरे मामा सरीखे आदमी संसारमें बहुत कम होंगे,—उनका तुम मजाक मत उड़ाओ। उनके दुःख-कष्टोंसे तुम भले ही वाकिफ न हो, लेकिन दुनिया जानती है—" कहकर एक घूँट-सा भरा, फिर जरा बगलें झाँककर कहा, "इसके सिवा, उन्होंने रुपये लिये हैं मेरे ब्याह होनेके पहले। मुझे बेचनेका अधिकार उन्हें है ही नहीं, और न उन्होंने बेचा ही है। यह अधिकार सिर्फ तुम्हींको है, तुम चाहो तो रुपये देनेके डरसे मुझे बेच भी डाल सकते हो!"

इतना कहकर वह उत्तरके लिए प्रतीक्षा किये बिना ही जल्दीसे अन्यत्र चली गई।

९

उस रातको बहुत देरतक शेखर विह्वलकी भाँति रास्तेमें घूमता रहा और घर जाकर सोचने लगा: उस दिनकी जरा-सी ललिता,—वह इतनी बातें सीख कहाँसे गई? इस तरह निर्लज्ज मुखराकी तरह उसके मुँहपर वह बोली कैसे?

आज ललिताके व्यवहारसे सचमुच ही वह अत्यन्त विस्मित और क्रुद्ध हो गया था। मगर, अगर वह शान्त चित्तसे विचार कर देखता कि इस क्रोधका यथार्थ कारण क्या है, तो मालूम हो जाता कि उसका गुस्सा असलमें ललितापर नहीं, बल्कि अपने ही ऊपर था।

ललिताको छोड़कर इन कई महीनोंके प्रवासमें उसने अपनी कल्पनाओंमें अपनेहीको आबद्ध कर लिया था। सिर्फ काल्पनिक सुख-दुःख और हानि-लाभका हिसाब लगाकर ही वह इस बातका खयाल कर रहा था कि ललिताका उसके जीवनमें कितना स्थान है, भविष्यके साथ उसका कैसा अछेद्य बन्धन है, उसकी अनुपस्थितिमें उसका जीना कितना कठिन और कष्टकर है। ललिता बचपनहीसे उसकी गृहस्थीमें घुल-मिल गई थी, इसीसे उसे न वह खास तौरसे गृहस्थीके भीतर बाप-मा और भाई-बहनके बीच एक साथ मिलाकर ही देख सका, और न कभी इसका विचार ही कर पाया। उसकी यह दुश्चिन्ता बराबर धारा-प्रवाह चल ही रही थी कि ललिताको शायद वह न पा सकेगा, माता-पिता इस ब्याहमें सम्मति न देंगे, और शायद वह और किसीकी होकर रहेगी। इसीसे विदेश जानेके पहले, उस रातको, वह जबरदस्ती उसके गलेमें माला डाल कर इस दिशाकी दरारको जोड़ गया था।

प्रवासमें रहकर गुरुचरणके धर्म-परिवर्तनका समाचार सुनकर वह व्याकुल होकर दिन-रात यही चिन्ता करता रहा था कि कहीं ललितासे हाथ न धोना पड़े। सुखकर हो या दुःखकर, दुश्चिन्ताकी इसी दिशासे वह परिचित था। आज ललिताकी स्पष्टोक्तिने उसकी चिन्ताकी इस दिशाको जोरके साथ बन्द करके उस धाराको बिलकुल उलटी तरफ बहा दिया। पहले उसे चिन्ता थी कि शायद ललिता न मिले, पर अब चिन्ता हो गई, शायद वह छोड़ी नहीं जा सके!

श्यामबाजारका सम्बन्ध टूट गया था। वे लोग भी इतने रुपये देनेके नामसे अन्तमें पीछे कदम हटा चुके थे और शेखरकी माको भी वह लड़की पसन्द नहीं आई थी। लिहाजा, उस बलासे शेखरको फिलहाल यद्यपि छुटकारा मिल गया था, पर नवीन राय दस-बीस हजारकी बात नहीं भूले थे, और उस दिशामें वे निश्चेष्ट भी नहीं थे।

शेखर सोच रहा था - क्या किया जाय! उस रातका उसका वह काम इतना बड़ा गम्भीर रूप धारण करेगा, और ललिता उसपर इस तरह बिना किसी संशयके विश्वास कर बैठेगी कि उसका सचमुच ही ब्याह हो चुका है और धर्मतः किसी भी कारणसे इसमें फर्क नहीं आ सकता,—ये सब बातें शेखरने विचारकर नहीं देखी थीं। यद्यपि उसने अपने ही मुँहसे कहा था कि 'जो होना था सो गया, अब न तो तुम ही लौटा सकती हो और न मैं ही,' परन्तु आज जिस तरहसे वह सब कुछ विचारकर देख रहा है, उस दिन उस समय इस तरह विचारनेकी न तो उसमें शक्ति ही थी और न शायद इतना अवकाश ही। उस समय सिरके ऊपर चाँद था, चारों तरफ चाँदनी छिटक रही थी, गलेमें माला झूम रही थी, प्रियतमाका वक्ष स्पन्दन अपनी छातीपर पाकर उसकी प्रथम अनुभूतिका मोह था, और था प्रणयी जनोंने जिसे अधरामृत कहा है उसके पीनेका तीव्र नशा। उस समय स्वार्थ और सासारिक भलाई-बुराईका कुछ खयाल ही नहीं था, और न अर्थ-लोलुप पिताकी रुद्र मूर्ति ही आँखोंके सामने आई थी। सोचा था, मा तो ललिताको बहुत प्यार करती ही हैं उन्हें सहमत करानेमें कठिनाई न होगी और भइयाके द्वारा पिताके किसी तरह कोमल करा लेनेसे अन्त तक, शायद, काम बन जाय! इसके सिवा, गुरुचरणने तब इस तरह अपनेको विच्छिन्न करके उनकी आशाका मार्ग पत्थरसे इस कदर मजबूतीके साथ बन्द भी नहीं कर डाला था।

वास्तवमें शेखरके लिए चिन्ता करनेकी ऐसी कोई खास बात रही नहीं थी।

अब वह निश्चयसे समझ रहा था कि पिताको राजी कराना तो बहुत दूर रहा, माको राजी करना भी सम्भव नहीं।—यह बात अब तो मुँहसे भी नहीं निकाली जा सकती!

शेखरने एक गहरी साँस लेकर फिर एक बार अस्फुट स्वरमें दुहराया : क्या किया जाय! वह ललिताको अच्छी तरह पहचानता है, उसे उसने अपने हाथों बनाया है,—एक बार जिसे वह धर्म समझकर अंगीकार कर चुकी है, किसी भी तरह उसे छोड़ नहीं सकेगी। उसने समझ लिया है कि मैं शेखरकी धर्मपत्नी हूँ, इसीसे वह आज शामको अँधेरेमें उसकी छातीके पास आकर मुँहके पास मुँह लाकर इस तरह आ खड़ी हुई थी!

गिरीन्द्रके साथ उसके ब्याहकी बातचीत हो रही है,—मगर कोई भी उसे इसके लिए राजी नहीं करा सकता! अब तो वह किसी भी तरह चुप नहीं रहेगी! अब वह सब कुछ प्रकट कर देगी!—शेखरका मुँह और आँखें उत्तप्त हो उठीं। वास्तवमें बात भी तो सच है, वह सिर्फ माला बदलकर ही तो शान्त नहीं हुआ, उसने उसे अपनी छातीसे लगाकर चुम्बन भी तो लिया था! ललिताने बाधा नहीं दी; इसमें दोष नहीं, इसीसे नहीं दी,—इसका उसे अधिकार था, इसीसे नहीं दी!—अब इस व्यवहारका जवाब वह किसीके आगे क्या देगा?

यह निश्चित है कि माता-पिताको बगैर राजी किये ललिताके साथ उसका ब्याह नहीं हो सकता, परन्तु गिरीन्द्रके साथ ललिताका ब्याह न होनेका कारण प्रकट होनेके बाद वह घर और बाहर सब जगह मुँह कैसे दिखायेगा?

१०

असम्भव होनेसे शेखरने ललिताकी आशा बिलकुल ही छोड़ दी थी। शुरू शुरूमें वह कुछ दिनों तक मन ही मन अत्यन्त डरता हुआ रहा,—कहीं अचानक वह आ जाय और सब बातें प्रकट कर दे! कहीं इस बातको लेकर उसे सबके सामने जवाबदेही करनी पड़े! मगर किसीने उससे कोई कैफियत नहीं माँगी, कोई बात प्रकट हुई है या नहीं, माँ भी नहीं मालूम हुआ, यहाँ तक कि उस घरसे इस घरमें किसीका आना-जाना भी नहीं हुआ।

शेखरके कमरेके सामने जो खुली हुई छत थी, उसपर खड़े होनेसे ललिताकी छतका सब कुछ दिखाई देता है। कहीं ललितासे सामना न हो जाय, इस डरसे वह छतपर भी नहीं जाता। परन्तु, जब बिना किसी विघ्नके महीना भर

बीत गया तब वह बेफिक्रीकी साँस लेकर मन ही मन बोला, आखिर कुछ भी हो, औरतोंके लिहाज-शरम तो होती ही है,—वे ये सब बातें प्रकट कर ही नहीं सकतीं। शेखरने सुन रक्खा था कि औरतोंकी छाती फटे तो फटे, पर मुँह नहीं फटता। इस बातपर उसे आज विश्वास हो गया और सृष्टिकर्त्ताने उनके शरीरमें ऐसी कमजोरी दी है, इसके लिए उसने मन ही मन उसकी तारीफ भी की!—मगर फिर भी उसे शान्ति क्यों नहीं मिल रही है? जबसे वह समझ गया कि अब डरकी कोई बात नहीं, तभीसे उसकी छातीमें एक तरहकी अभूतपूर्व वेदना-सी क्यों इकट्ठी होती जा रही है?—रह-रहकर हृदयका अन्तरतम मर्मस्थल तक इस तरह निराशा, वेदना और आशकासे क्यों काँप उठता है? अब क्या ललिता किसीसे कुछ कहेगी नहीं, और किसीके हाथ अपनेको सौंपते समय तक मौन ही बनी रहेगी?—इस बातका विचार करते ही कि उसका ब्याह हो चुका है,—वह अपने पतिका घर करने चली गई है, उसके मन और शरीरमें इस कदर आग-सी क्यों जल उठती है?

पहले वह शामके वक्त घूमने न जाकर सामनेकी खुली छतपर टहला करता था, अब भी टहलने लगा; परन्तु एक दिन भी उस घरका कोई भी उसे छतपर नहीं दिखाई दिया। सिर्फ एक दिन अन्नाकाली छतपर किसी कामसे आई थी, परन्तु उसकी तरफ देखते ही उसने निगाह नीची कर ली और शेखरके यह तय करनेके पहले ही कि वह उसे बुलाये या नहीं, वह वहाँसे अदृश्य हो गई। शेखर मनमें समझ गया कि हम लोगोंने जो छतका रास्ता बन्द करवा दिया है, उसका अर्थ यह नन्हीं-सी काली तक समझ गई है।

और भी एक महीना बीत गया।

एक दिन भुवनेश्वरीने बातो ही बातोंमें कहा, "इधर तैंने ललिताको देखा है, शेखर?"

शेखरने सिर हिलाकर कहा, "नहीं तो, क्यों?"

माने कहा, "लगभग दो महीने बाद कल उसे छतपर देखा तो मैंने बुलाया।—लड़की न जाने कैसी हो गई है। दुबली-पतली, मुँह सूखा-सा,—जैसे बहुत उमर हो गई हो! ऐसी गम्भीर कि किसकी मजाल जो कह दे यह चौदह सालकी लड़की है!" कहते कहते उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। हाथसे उन्हें पोंछती हुई भारी गलेसे बोलीं, "मैली-कुचैली धोती पहने, पल्लेपर थिगरा लगा हुआ,—मैंने पूछा, तेरे पास और धोती नहीं है क्या बिटिया? कहा

उसने 'है,' पर मुझे विश्वास नहीं हुआ। किसी भी दिन उसने अपने मामाके दिये हुए कपड़े नहीं पहने, मैं ही दिया करती थी,—सो मैंने छह-सात महीनेसे कुछ दिया भी नहीं।" आगे उनसे बोला नहीं गया, पल्लेसे आँखें पोंछने लगीं,—वास्तवमें ललिताको वे अपनी लड़कीकी तरह प्यार करती थीं।

शेखर दूसरी तरफ निगाह किये चुपचाप बैठा रहा।

बहुत देर बाद मा फिर कहने लगीं, "मेरे सिवा किसी दिन उसने और किसीसे कुछ माँगा भी नहीं। बेवक्त भूख लगती तो मुँह खोलकर घरपर किसीसे कुछ कहती तक नहीं थी, मैं ही उसे खानेको दिया करती थी।—वह मेरे ही पास घूमा करती थी,—मैं उसका मुँह देखते ही समझ जाती कि भूखी है। मुझे उसी बातकी याद आती है शेखर, अब भी शायद वह उसी तरह भूखी मारी-मारी फिरती होगी पर माँगती न होगी! कोई न तो उसकी बात समझता होगा और न कोई कुछ पूछता ही होगा! मुझे वह सिर्फ 'मा' कहती ही न थी, बल्कि माकी तरह मानती और प्यार भी करती थी।"

शेखरसे हिम्मत करके माके मुँहकी तरफ आँख करते न बना, जिस तरफ देख रहा था उसी तरफ देखता हुआ बोला, "अच्छा ही तो है मा, उसे बुलाकर पूछ क्यों नहीं लेतीं कि उसे क्या क्या चाहिए?"

"वह लेगी क्यों? इन्होंने जाने-आनेका रास्ता तक बन्द कर दिया। मैं ही भला किस मुँहसे उसे देने जाऊँ? माना कि लालाजीने दुःखमें पड़कर एक गल्ती कर ही डाली तो हम लोग तो उनके अपने ही जैसे हैं,—चाहिए तो यह था कि कुछ प्रायश्चित्त-वायश्चित्त करवा-कुरवाकर ढक-ढका देते। सो तो किया नहीं, उल्टा उन्हें छेककर बिलकुल गैर कर दिया। और सच तो यह है कि इन्हींसे तंग आकर बेचारेको जात खोनी पड़ी है। तकाजा, हरदम तकाजा,—मनमें घृणा बैठ जाय तो आदमी सब कुछ कर सकता है। बल्कि, मैं तो कहूँगी कि लालाजीने अच्छा ही किया। वह गिरीन लड़का हम लोगोंसे उनका कहीं ज्यादा अपना है। उसके साथ ललिताका ब्याह हो जाय तो वह सुखसे रहेगी, इतना तो मैं भी जानती हूँ। सुना है, अगले महीनेमें ब्याह होगा।"

सहसा शेखरने माकी तरफ मुँह करके पूछा, "अगले महीने ही होगा क्या?"

"सुन तो ऐसा ही रही हूँ।"

शेखरने और कुछ नहीं पूछा।

मा कुछ देर चुप रहकर कहने लगीं, "ललिताके मुँहसे ही सुना था कि उसके मामाकी तबीयत भी आजकल ठीक नहीं रहती। सो ठीक ही है। एक तो उनके मनमें सुख नहीं, उसपर घरमे रोज रोना-झींकना,—एक मिनटके लिए भी बेचारेको घरमें शान्ति नहीं।"

शेखर चुपचाप सुन रहा था, और अब भी चुप रहा। थोड़ी देर बाद माके उठ जानेपर वह अपने बिस्तरपर जाकर पड़ रहा और ललिताकी बात सोचने लगा।

जिस गलीमें शेखरका मकान है उसमें दो गाड़ी आसानीसे जा सकें, इतना स्थान नहीं था : एक गाड़ी एक तरफ बिलकुल किनारेसे सटकर न खड़ी हो तो दूसरी उसके बगलसे नहीं निकल सकती। आठ दस दिन बाद एक दिन शेखरकी आफिस-गाड़ी गुरुचरणके मकानके सामने रुकावट पाकर खड़ी हो गई। शेखर आफिससे लौट रहा था, उतर कर पूछनेपर मालूम हुआ कि डाक्टर आया है।

उसने कुछ दिन पहले मासे सुना था कि गुरुचरणकी तबीयत ठीक नहीं रहती। उस बातका खयाल करके वह अपने घर नहीं गया, सीधा जाकर गुरुचरणके सोनेके कमरेमें जा पहुँचा। बात बिलकुल ठीक निकली. गुरुचरण निर्जीवकी भाँति बिस्तरपर पड़े हैं, एक तरफ ललिता और गिरीन्द्र सूखे-मुँह बैठे हैं, सामनेकी कुरसीपर बैठा डाक्टर रोगीकी परीक्षा कर रहा है।

गुरुचरणने अस्फुट स्वरमें उसे बैठनेके लिए कहा और ललिता माथेका पल्ला जरा नीचा करके घूमकर बैठ गई।

डाक्टर मुहल्लेका ही है, शेखरको पहचानता है। रोगकी परीक्षा करके और दवा आदिकी व्यवस्था करके वह शेखरके साथ बाहर आकर बैठ गया। गिरीन्द्र पीछेसे आकर रुपये देकर डाक्टरको बिदा करने लगा तो उसने सावधान कर दिया कि रोग अब भी ज्यादा नहीं बढ़ा है, इस समय आब-हवा बदलनेकी खास जरूरत है।

डाक्टरके चले जानेपर दोनों फिर गुरुचरणके पास आकर खड़े हो गये।

ललिता इशारेसे गिरीन्द्रको एक तरफ बुलाकर चुपके चुपके उससे कुछ कहने लगी। शेखर सामनेकी कुरसीपर बैठकर सन्न होकर गुरुचरणकी तरफ देखता रहा। गुरुचरण पहलेसे ही उधरकी ओर करवट लिये सो रहे थे। उन्हें शेखरका दुबारा आना मालूम ही नहीं हुआ।

थोड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहनेके बाद शेखर उठकर चल दिया। तब तक

ललिता और गिरीन्द्र [illegible] चुपके चुपके बतरा रहे थे,—उससे न तो किसीने बैठनेको ही कहा, और न उसकी किसीने कोई बात तक पूछी।

आज वह निश्चित रूपसे समझ गया कि ललिताने उसे अब उस कठोर दायित्वसे हमेशाके लिए मुक्त कर दिया है,—अब वह निर्भय होकर दम ले सकता है।—अब कोई शंका नहीं,—अब ललिता उसे न फँसेगी। घर आकर हजारों बार उसे खयाल आने लगा: आज वह अपनी आँखोंसे देख आया है, गिरीन ही उस घरका परम बन्धु और अपना आदमी है,—सबकी आशा और भरोसा उसीपर है और ललिताके भविष्यका आश्रय भी वही है। मैं अब उनका कोई नहीं हूँ,—ऐसी विपत्तिके समय भी ललिता मेरे मुँहसे एक सलाह तककी आशा नहीं रखती!

वह सहसा "उःफ्" करके गद्दीदार आराम-कुरसीपर सिर झुकाकर बैठ गया। ललिताने उसे देखकर माथेका पल्ला खींचकर मुँह फेर लिया था जैसे वह बिलकुल ही गैर हो,—बिलकुल अपरिचित! और फिर, उसीकी आँखोंके सामने गिरीनको ओटमें बुलाकर न जाने क्या क्या सलाहें होती रहीं! और मजा यह कि एक दिन उसीके साथ थियेटर जानेसे ललिताको उसने रोक दिया था।

फिर भी उसने एक बार विचारनेकी कोशिश की कि शायद उसने आपसके गुप्त सम्बन्धका खयाल करके शरमके मारे ऐसा व्यवहार किया होगा। मगर ऐसा भी कैसे सम्भव हो सकता है?—तो क्या इतनी बात हो जानेपर भी वह इतने दिनोंमे एक भी बात किसी भी बहाने उससे पूछनेकी कोशिश नहीं कर सकती थी?

सहसा दरवाजेके बाहर माकी आवाज सुनाई दी। वे पुकार कर कह रही थीं, "कहाँ है तू, अभी तक हाथ-मुँह नहीं धोया,—शाम हुई जा रही है जो!"

शेखर जल्दीसे उठ खड़ा हुआ, और इस ढगसे मुँह फेरकर झटपट नीचे उतर गया जिससे मा उसका चेहरा न देख सके।

इधर कई दिनोंसे बहुत सी बातें अनेक तरहका रूप धरकर रात-दिन उसके मनमें आती-जाती रही हैं पर सिर्फ एक बात ही वह नहीं सोचता था कि वास्तवमें दोष किसका है: न एक भी आशाकी बात उसने आज तक उससे कही, और न उसे ही कहनेका मौका दिया। बल्कि इस डरमे कि कहीं भंडाफोड़ न हो जाय और वह किसी तरहका दावा न कर बैठे, वह पत्थर-सा निश्चेष्ट हो रहा था। फिर भी सब तरहका अपराध ललिताके माथे लादकर वह उसका विचार कर रहा था, और अपनी ही ईर्ष्यामे, अपने ही क्रोधसे, अपने ही अभिमान और अपमानसे

अपने आप जल मर रहा था !—शायद, इसी तरह संसारके सभी पुरुष स्त्रियोंका विचार करते हैं और इसी तरह जलते रहते हैं।

जलते जलते उसके सात दिन कट गये, आज भी शामके बाद वह अपने निस्तब्ध कमरेमें वही आग लगाये बैठा था, सहसा दरवाजेके पास शब्द सुनकर और मुँह उठा कर देखते ही उसका हृदय उबल पड़ा। कालीका हाथ पकड़े ललिता कमरेके भीतर आकर नीचे कारपेटके फर्शपर बैठ गई। कालीने कहा, "शेखर भइया, हम दोनों तुमको प्रणाम करने आई हैं,—कल हम लोग चली जायँगीं ?"

शेखरके मुँहसे बात नहीं निकली, वह सिर्फ एकटक देखता रहा।

कालीने कहा, "बहुत कसूर तुम्हारे चरणोंमें रहकर किये हैं शेखर भइया, सो सब भूल जाना।"

शेखर समझ गया कि इसमेंसे एक भी बात कालीकी अपनी नहीं है, वह सिखाई हुई ही बोल रही है। उसने पूछा, "कल कहाँ जा रहीं हो तुम लोग ?"

"पश्चिम। बाबूजीको लेकर हम लोग सभी मुंगेर जायँगे। वहाँ गिरीन बाबूका मकान है। बाबूजीके अच्छे हो जानेपर भी शायद हम लोगोंका अब यहाँ आना न होगा। डाक्टरने कहा है कि यहाँ बाबूजीकी तबीयत कभी ठीक नहीं रह सकती।"

शेखरने पूछा, "अभी उनकी तबीयत कैसी है ?"

"कुछ अच्छी है।" कहकर कालीने आँचलके भीतरसे कई एक साड़ियाँ निकालकर दिखाते हुए कहा, "ताईजीने दी हैं ये।"

ललिता अब तक चुप बैठी थी, उठकर टेबिलपर एक चाबी रखती हुई बोली, "आलमारीकी चाबी इतने दिनोंसे मेरे पास ही थी," फिर जरा हँसकर बोली, "लेकिन रुपया इसमें एक भी नहीं है, सब खर्च हो गये हैं।"

शेखर चुप रहा।

कालीने कहा, "चलो जीजी, रात हुई जा रही है।"

ललिताके कुछ कहनेके पहले ही अबकी बार शेखर सहसा व्यस्तताके साथ बोल उठा, "काली, नीचेसे जरा मेरे लिए पान तो ले आ बहन।"

ललिताने उसका हाथ मसककर कहा, "तू यहीं बैठ काली, मैं लाये देती हूँ।" और जल्दीसे वह नीचे चली गई। थोड़ी देर बाद पान लाकर उसने कालीके हाथमें थमा दिये, और उसने शेखरको दे दिये।

पान हाथमें लेकर शेखर निस्तब्ध होकर बैठा रहा।

"चलती-हूँ शेखर भैया।" कहकर कालीने पैरोंके पास आकर जमीनसे सिर टेककर प्रणाम किया। ललिताने जहाँ खड़ी थी वहींसे जमीनसे माथा लगाकर प्रणाम किया, और दोनोंकी दोनों धीरे धीरे चली गईं।

शेखर अपनी भलाई-बुराई और आत्म-सम्मान लिये हुए पाण्डुर मुखसे विह्वल हतबुद्धिकी तरह स्तब्ध होकर बैठा रहा। ललिता आई, और जो कुछ कहना था, कहकर हमेशाके लिए विदा हो गई। इस तरहसे सारा समय बीत गया मानो, कहनेको उसे कुछ था ही नहीं। इस बातको शेखर मन ही मन समझ गया कि ललिता कालीको जान-बूझकर ही संग लाई थी; कारण वह चाहती नहीं कि कोई बात उठे। इसके बाद उसका सारा शरीर न जाने कैसा होने लगा, जी मतला उठा, सिरमें चक्कर आने लगा,—आखिर वह उठकर बिस्तरपर गया और आँख मीचकर सो रहा।

११

गुरुचरणका टूटा शरीर मुँगेरकी आब-हवासे भी जुड़कर ठीक न हो सका। साल-भर बाद वे अपने दुःख-कष्टोंका बोझ उतारकर हमेशाके लिए यहाँसे चल दिये। गिरीन्द्र सचमुच ही उन्हें काफी चाहने लगा था और अन्ततक उनके लिए यथासाध्य कोशिश करता रहा। पर कुछ न हुआ।

मरनेके पहले गुरुचरणने गिरीनका हाथ पकड़कर आँसू-भरे कंठसे अनुरोध किया था कि तुम कभी किसी दिन गैर न हो जाना और यह गंभीर बन्धुत्व भगवान करें निकट आत्मीयतामें परिणत हो जाय। वे अपनी आँखोंसे यह देखकर नहीं जा सके,—बीमारीके झंझटमें समय ही नहीं मिला, परन्तु परलोकमें रहकर वे देख सके कि गिरीन्द्रने उस समय सानन्द और सर्वान्तःकरणसे ही उन्हें वचन दिया था।

गुरुचरणके कलकत्तेवाले मकानमें जो किरायेदार थे उनके द्वारा भुवनेश्वरीको बीच-बीचमें उनका समाचार मिल जाया करता था। गुरुचरणके मरनेकी खबर भी उनसे उन्हें मिल गई।

इसके बाद एक जबरदस्त दुर्घटना हुई: नवीन रायकी सहसा मृत्यु हो गई। भुवनेश्वरी शोक और दुःखसे पागल-सी होकर बड़ी बहूके हाथ गृहस्थीका भार सौंपकर काशी चली गईं। कह गईं, "आगामी वर्ष सब कुछ ठीक हो जानेपर मैं आकर शेखरका ब्याह कर जाऊँगी।"

विवाहका सम्बन्ध नवीन रायने खुद ही ठीक किया था, और अब तक नक

हो भी जाता, पर अचानक उनकी मृत्यु हो जानेसे ब्याह साल-भरके लिए स्थगित हो गया। पर कन्यापक्षवाले अब ज्यादा देर नहीं कर सकते थे, इसलिए वे कल आकर लड़केको आशीर्वाद कर गये हैं। इसी महीनेमें ब्याह होगा, इसलिए आज शेखर अपनी माको लानेके लिए काशी जानेकी तैयारी कर रहा था और आलमारीमेंसे चीज-वस्त निकालकर बॉक्समें सजा रहा था। बहुत दिन बाद आज उसे फिर ललिताकी याद आ गई।—यह सब काम वही किया करती थी!

तीन सालसे ज्यादा हो गया, वे सब यहाँसे चली गई थीं। इस बीचमें उनका कोई समाचार ही उसे नहीं मालूम हुआ, मालूम करनेकी कोशिश भी नहीं की, और शायद उसे अब कोई दिलचस्पी भी नहीं रही थी।—ललितापर क्रमशः उसे घृणा-सी होती जा रही थी। परन्तु, आज सहसा उसके मनमें आई, अगर किसी तरह उसकी कोई खबर मिल जाती! कौन कैसे हैं, हालाँ कि इस बातको वह जानता था, सब अच्छे ही होंगे, कारण गिरीन्द्रके पास रुपया है, फिर भी वह सुननेकी इच्छा करने लगा कि कब उसका ब्याह हुआ, उसके साथ वह किस तरह रहती है—इत्यादि।

गुरुचरणवाले मकानमें अब कोई किरायेदार नहीं रहता। दो महीने हुए, मकान खाली पड़ा है। शेखरके एक बार मनमें आई कि चारुके बापसे जाकर पूछ आये, क्योंकि, उन्हें गिरीन्द्रके समाचार जरूर मालूम होंगे। क्षण-भरके लिए बॉक्स सजाना स्थगित रखकर वह शून्यदृष्टिसे खिड़कीके बाहरकी ओर देखकर यही सब सोचता रहा, इतनेमें दरवाजेके बाहरसे पुरानी महरी आकर बोली, "छोटे बाबू, कालीकी माने आपको एक बार बुलाया है।"

शेखरने मुँह फेरकर उसकी तरफ अत्यन्त आश्चर्यके साथ देखते हुए कहा, "कालीकी मा?"

दासीने हाथसे गुरुचरणके मकानकी तरफ इशारा करके कहा, "अपनी कालीकी मा, छोटे बाबू, वे सब कल रातको मुंगेरसे वापस जो आ गई हैं!"

"चलो, आता हूँ।" कहकर वह उसी समय उतरकर चल दिया।

तब दिन ढल रहा था। शेखरके घरमें घुसते ही वहाँसे छाती-फाड़ रोनेकी आवाज सुनाई दी। विधवा-वेशधारिणी गुरुचरणकी स्त्रीके पास जाकर वह जमीनपर बैठ गया और धोतीके खूँटसे चुपचाप अपनी आँखें पोंछने लगा।—सिर्फ गुरुचरणके लिए ही नहीं, अपने पिताके शोकसे भी वह फिर एकबार अभिभूत हो गया।

शाम होनेपर ललिता आकर दिआ जला गई। दूरसे गलेमें आँचल डालकर उसने शेखरको प्रणाम किया और क्षण-भर ठहरकर वह धीरे धीरे चली गई। शेखर सत्रह वर्षकी युवती पर-स्त्रीकी तरफ आँख उठाकर न देख सका और न उसे बुलाकर बातचीत ही कर सका। फिर भी कनखियोंसे वह जितनी दिखाई दी थी उससे मालूम हुआ कि वह पहलेसे और भी बड़ी और बहुत ही दुबली हो गई है।

बहुत रोने-धोनेके बाद गुरुचरणकी विधवा स्त्रीने जो कुछ कहा, उसका सार यह था कि इस मकानको बेचकर वे मुंगेरमें अपने जमाईके पास रहेंगी, यही उनकी इच्छा है। मकान बहुत दिनोंसे शेखरके पिता खरीदना चाहते थे, इस समय उचित मूल्यपर उनके खरीद लेनेसे मकान एक तरहसे घरका घरमें ही रह जायगा, उनको भी किसी तरहका दुःख न होगा और भविष्यमें अगर कभी वे इधर आयें भी तो दो एक दिन इस घरमें रह भी सकती हैं—इत्यादि। शेखरने कहा कि मा-से पूछकर यथासाध्य इसके लिए कोशिश करूँगा। इसपर उन्होंने आँसू पोंछते हुए कहा, "जीजी क्या इस बीचमें यहाँ आयेंगी नहीं शेखर?"

शेखरने जताया कि आज रातको ही वह उन्हें लेने जा रहा है। इसके बाद उन्होंने एक एक करके घरके छोटे-मोटे समाचार जान लिये—शेखरका कब ब्याह है, कहाँ बारात जायगी, कितने हजार रुपये और कितना जेवर मिलेगा, जेठजी कैसे मरे थे, जीजीने क्या किया, इत्यादि बहुत-सी बातें पूछीं और उनका जवाब सुना।

शेखरको जब वहाँसे छुटकारा मिला, तब चाँदनी फैल चुकी थी। इसी समय गिरीन्द्र ऊपरसे उतरकर शायद अपनी बहनके घर जा रहा था। गुरुचरणकी विधवा उसे देखकर शेखरसे कहने लगीं, "मेरे जमाईके साथ तुम्हारी बातचीत नहीं हुई शेखर? ऐसा लड़का दुनियामें मिलना दुस्वार है।"

शेखरने कहा कि इस बातमें उसे रत्तीमात्र भी सन्देह नहीं; और बातचीत भी उसकी हो चुकी है, इतना कहकर वह जल्दीसे बाहर चला गया। परन्तु बाहरकी बैठकके सामने आकर उसे सहसा ठहर जाना पड़ा।

अँधेरेमें, दरवाजेकी ओटमें ललिता खड़ी थी, उसने कहा, "सुनो, माको क्या आज ही लाने जा रहे हो?"

शेखरने कहा, "हाँ।"

"वे क्या बहुत ज्यादा घबरा गई हैं?"

"हाँ, लगभग पागल-सी हो गई है।"

"तुम्हारी तबीयत कैसी है?"

"अच्छी है।"—कहकर शेखर झटपट वहाँसे चल दिया।

रास्तेपर आकर उसका नीचेसे ऊपर तक सारा शरीर मारे लज्जा और घृणाके सिहर उठा! उसे ऐसा मालूम होने लगा कि ललिताके पास खड़े होनेसे उसका शरीर मानो अपवित्र हो गया हो! घर आकर उसने जैसे-तैसे बॉक्स भर-भराकर बन्द कर दिया, और अभी गाड़ीमें देर है जानकर खाटपर लेट गया। ललिताकी विषाक्त स्मृतिको जलाकर भस्म कर देनेकी प्रतिज्ञा करके उसने हृदयके रन्ध्र-रन्ध्रमें घृणाका दावानल जला दिया। जलनकी यातनामें उसने उसका मन-ही-मन अकथ्य शब्दोंमें तिरस्कार किया, यहाँ तक कि कुलटा कहनेमें भी उसे संकोच नहीं हुआ। गुरुचरणकी स्त्रीने उससे बातों ही बातोंमें कहा था कि लड़कीका ब्याह कोई आनन्दका ब्याह थोड़े ही था, इसीसे किसीको कुछ खयाल नहीं रहा, नहीं तो ललिताने उस वक्त तुम सबोंको चिट्ठी देनेके लिए कहा था। ललिताकी यह हिमाकत मानो सारी आगके ऊपर लहराती हुई लौ बनकर लपटें लेने लगी।

१२

शेखर माको लेकर जिस दिन लौटा, उस दिन भी उसके ब्याहको दस बारह दिनकी देर थी।

तीन चार दिन बाद, एक दिन सबेरे ललिता शेखरकी माके पास बैठी एक टोकनीमें कुछ रख रही थी। शेखरको मालूम न था, इसीसे किसी एक कामसे वह 'मा' कहकर भीतर घुसा ही था कि सहसा भौंचक्का-सा ठिठककर खड़ा हो गया। ललिता मुँह नीचा किये काम करने लगी।

माने पूछा, "क्या है रे!"

वह जिस कामके लिए आया था, उसे भूल गया, और "नहीं, अभी रहने दो" कहकर जल्दीसे बाहर निकल गया। ललिताका चेहरा उसे नहीं दिखाई दिया, पर उसके दोनों हाथोंपर उसकी निगाह पड़ गई। हाथ बिलकुल सूने थे, सिर्फ दो-दो काँचकी चूड़ियाँ पड़ी हुई थीं, और कुछ नहीं। शेखर मन ही मन क्रुद्ध होकर हँसने लगा—"यह भी एक तरहका ढोंग है!" गिरीन

पैसेवाला है, यह उसे मालूम था। उसकी स्त्रीके हाथ बगैर गहनोंके ऐसे रीते रीते होनेको कोई संगत कारण उसे ढूँढ़े नहीं मिला।

उस दिन शामके वक्त जल्दी जल्दी नीचे उतर रहा था, और ललिता भी उसी जीनेसे ऊपर जा रही थी; वह एक तरफ दीवारसे सटकर खड़ी हो गई। मगर, शेखरके पास आते ही अत्यन्त संकोचके साथ उसने धीमे स्वरमें कहा, "तुमसे एक बात कहनी है!"

शेखर क्षण-भर स्थिर रहकर विस्मयके स्वरमें बोला, "किससे? मुझसे?"

ललिता पूर्ववत् मृदुकंठसे बोली, "हाँ, तुमसे!"

"मुझसे तुम्हें क्या कहना है!"—कहकर शेखर पहलेकी अपेक्षा और भी जल्दी जल्दी नीचे उतर गया।

ललिता वहीं कुछ देर तक स्तब्ध होकर खड़ी रही और छोटी-सी एक साँस छोड़कर धीरे-धीरे चली गई।

दूसरे दिन शेखर अपने बाहरके कमरेमे बैठा उस दिनका अखबार पढ़ रहा था। पढ़ते-पढ़ते उसने अत्यन्त आश्चर्यके साथ मुँह उठाकर देखा कि गिरीन्द्र उसके कमरेमे आ रहा है। गिरीन्द्र नमस्कार करके एक कुरसी खींचकर पास बैठ गया, और शेखर प्रति-नमस्कार करके अखबारको एक तरफ रखकर जिज्ञासु दृष्टिसे उसकी तरफ देखने लगा। दोनोंकी जान-पहचान आँखों-आँखोंमें जरूर थी, पर बातचीत नहीं हुई थी; और इसके लिए आज तक दोनोंमेंसे कभी किसीने आग्रह भी प्रकट नहीं किया था।

गिरीन्द्रने एक बारगी कामकी बात छेड़ दी। बोला, "एक खास जरूरी कामके लिए आपको तकलीफ देने आया हूँ। मेरी सासजीका अभिप्राय तो आपने सुना ही होगा—अपना मकान वे आप लोगोंके हाथ बेच देना चाहती हैं। आज मेरी मार्फत उन्होंने कहला भेजा है कि जल्दी ही इसका कुछ फ़ैसला हो जाय तो वे इसी महीने मुंगेर चली जाँय।"

गिरीनको देखते ही शेखरकी छातीके भीतर तूफान उठ खड़ा हुआ था, उसकी बातें उसे जरा भी अच्छी नहीं लग रही थीं, उसने अप्रसन्न मुखसे कहा, "सो तो ठीक है, मगर पिताजीकी अनुपस्थितिमें अब भइया ही मालिक हैं, आपको उनसे कहना चाहिए।"

गिरीन्द्रने मुसकराते हुए कहा, "सो तो हम लोग भी जानते हैं। मगर उनसे आप ही कहें तो अच्छा हो।"

शेखरने उसी तरह जवाब दिया, " आप कहें, तो भी हो सकता है। उस तरफके अभिभावक तो इस समय आप ही हैं।"

गिरीन्द्रने कहा, "मेरे कहनेकी जरूरत हो तो मैं भी कह सकता हूँ, लेकिन कल बहनजी कह रही थीं कि आप जरा ध्यान दें तो काम बड़ी आसानीसे हो सकता है।"

शेखर अब तक एक मोटे तकियेके सहारे बैठा हुआ बात कर रहा था, अब सतर होकर बैठ गया। बोला, " कौन कह रही थीं ?"

गिरीन्द्रने कहा, " बहनजी—ललिता बहनजी कह रही थीं—"

शेखर मारे आश्चर्यके हतबुद्धि-सा हो गया। आगे गिरीन्द्र क्या क्या कहता गया, उसका रंचमात्र भी शेखरके कानमें नहीं गया। कुछ देर तक वह विह्वल-दृष्टिसे गिरीनके चेहरेकी तरफ देखता रहा, फिर सहसा बोल उठा, " मुझे माफ कीजिएगा गिरीन बाबू,—ललिताके साथ क्या आपका ब्याह नहीं हुआ ?"

गिरीन्द्रने दाँतों-तले जीभ दबाकर कहा, " जी नहीं,—उनके घरमें तो आप सभीको जानते हैं—कालीके साथ मेरा—"

" मगर ऐसी तो बात नहीं थी ?"

गिरीन्द्रने ललिताके मुँहसे सब बातें सुन रक्खी थीं, उसने कहा, " नहीं, बात नहीं थी, यह बात ठीक है। गुरुचरण बाबू मरते समय मुझसे अनुरोध कर गये थे कि मैं अन्यत्र कहीं भी ब्याह नहीं करूँ। मैंने भी वचन दिया था। उनकी मृत्युके बाद बहनजीने मुझे सब बातें समझाकर कहीं—हालाँ कि ये सब बातें और किसीको मालूम नहीं कि उनका ब्याह पहले ही हो चुका है और पति उनके जीवित मौजूद हैं। इस बातको शायद दूसरा कोई विश्वास न करता मगर मैंने उनकी किसी भी बातपर अविश्वास नहीं किया। इसके सिवा, स्त्रियोंका तो एक बारसे ज्यादा दुबारा ब्याह हो नहीं सकता,—अरे यह क्या ?'

शेखरकी दोनों आँखें आँसुओंसे भर आई थीं, अब उनमेंसे गिरीनके सामने ही धारा बह निकली। परन्तु, उधर उसका कुछ खयाल ही न था, उसे याद भी न आया कि पुरुषके सामने पुरुषकी इस तरह कमजोरी प्रकट हो जाना अत्यन्त लज्जाकी बात है।

गिरीन्द्र चुपचाप बैठा उसकी तरफ देखता रहा। उसके मनमें सन्देह तो था ही,—आज उसने ललिताके पतिको पहचान लिया! शेखरने आँखें पोंछकर भारी गलेसे कहा, " लेकिन, आप तो ललितासे स्नेह करते हैं ?"

गिरीन्द्रके चेहरेपर प्रच्छन्न वेदनाकी गहरी छाया-सी आ पड़ी, मगर दूसरे ही क्षण वह मन्द मन्द मुसकराने लगा। आहिस्ते-आहिस्ते कहने लगा, "इस बातका जवाब देना अनावश्यक है। इसके सिवा, स्नेह चाहे कितना ही गहरा क्यों न हो, जान बूझकर कोई पराई विवाहिता स्त्रीसे ब्याह नहीं कर सकता,—खैर जाने दीजिए, बड़ोंके सम्बन्धमें इस तरहकी चर्चा मैं करना नहीं चाहता।"—इसके बाद वह मुसकराता हुआ उठ खड़ा हुआ, और बोला, "आज जाता हूँ, फिर किसी दिन मुलाक़ात करूँगा।" इतना कहकर नमस्कार करके वह चल दिया।

गिरीन्द्रके प्रति शेखर शुरूसे ही विद्वेष रखता आया है, और इधर उसका वह विद्वेष घोर घृणामें परिणत हो गया था; किन्तु आज उसके चले जाते ही शेखर उठकर जमीनसे बार-बार सिर छुआकर इस अपरिचित ब्राह्म युवकके लिए बार-बार नमस्कार करने लगा। मनुष्य चुपचाप कितना बड़ा स्वार्थ-त्याग कर सकता है, हँसते-हँसते अपने वचनोंका किस कठिनताके साथ पालन कर सकता है,—यह बात शेखरने आज अपने जीवनमें पहले पहल देखी।

दोपहरके बाद, भुवनेश्वरी अपने कमरेमें फर्शपर बैठीं ललिताकी मददसे नये कपड़ोंका ढेर सम्हाल-सम्हालकर रख रही थीं, शेखर भीतर घुसकर माके बिस्तरपर बैठ गया। आज वह ललिताको देखके व्यस्त होकर भागा नहीं। माने उसे देखकर कहा, "क्या है रे?"

शेखरने जवाब नहीं दिया, चुप बैठा कपड़ोंकी थाक लगाना देखने लगा। थोड़ी देर बाद बोला, "यह क्या हो रहा है मा?"

माने कहा, "नये कपड़ोंमेंसे किसको क्या देना है, हिसाब लगाकर देख रही हूँ—शायद और भी मँगाने पड़ेंगे, न बिटिया?"

ललिताने गरदन हिलाकर समर्थन किया।

शेखरने हँसते चेहरेसे कहा, और अगर मैं ब्याह न करूँ मा?"

भुवनेश्वरी हँस दीं। बोलीं, "सो तुम कर सकते हो, तुममें इन गुणोंकी कमी नहीं।"

शेखर हँसकर बोला, "सो ही शायद होगा, मा।"

मा गम्भीर होकर कहने लगीं, "यह कैसी बात कह रहा है तू, ऐसी बुरी बात जबानपर मत ला।"

शेखरने कहा; "इतने दिनोंसे तो जबानपर लाया नहीं था,—पर अब बिना कहे *महापातक होगा, मा।*"

भुवनेश्वरी समझ न सकनेके कारण शंकित चेहरेसे उसकी तरफ देखने लगीं।

शेखरने कहा, "तुम अपने इस लड़केके बहुतसे कसूर माफ करती आई हो, इस कसूरको भी माफ करना होगा मा, सचमुच ही मैं यह ब्याह न कर सकूँगा।"

पुत्रकी बात और चेहरेका भाव देखकर भुवनेश्वरी सचमुच ही उद्विग्न हो उठीं, पर उस भावको दबाकर बोलीं, "अच्छा, अच्छा, मत करना। अभी जा तू यहाँसे, मुझे परेशान मत कर शेखर,—मुझे बहुत काम करना है!"

शेखर और एक बार हँसनेका व्यर्थ प्रयास करके सूखे स्वरमें कह उठा, "नहीं मा, सची कहता हूँ तुमसे, यह ब्याह नहीं हो सकेगा!"

"क्यों, यह क्या बच्चोंका खेल है?"

"खेल नहीं है, इसीसे तो कहता हूँ मा।"

भुवनेश्वरी अबकी बार अत्यन्त भयभीत हो उठीं, और गुस्सेसे बोलीं, "क्या हुआ है, मुझे समझाकर बता, क्या बात है? यह सब गड़बड़ीकी बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं।"

शेखरने मृदु-कठसे कहा, "और किसी दिन सुनना मा, और किसी दिन बताऊँगा।"

"और किसी दिन बतायेगा!"—उन्होंने कपड़ोंकी थाक एक तरफ हटाते हुए कहा—"तो आज ही मुझे काशी भेज दे, ऐसी गृहस्थीमें मैं एक रात भी नहीं बिताना चाहती।"

शेखर नीचेको सिर झुकाये बैठा रहा। भुवनेश्वरी और भी अस्थिर होकर कहने लगीं, "ललिता भी मेरे साथ जाना चाहती है, देखूँ इसके लिए अगर कोई बन्दोबस्त कर सकी—"

अबकी बार शेखर सिर उठाकर हँस दिया, बोला, "तुम साथ ले जाओगी, उसका फिर और बन्दोबस्त किसके साथ करोगी मा? तुम्हारी आज्ञासे बड़ी बात उसके लिए और क्या है?"

लड़केके चेहरेपर हँसी देखकर मा कुछ मन ही मन आशान्वित हुईं, ललिताकी तरफ देखकर बोलीं, "सुन लिया बेटी, इसकी बात सुन ली? यह समझता है कि मैं चाहूँ तो, तुम्हें जहाँ खुशी, ले जा सकती हूँ।—इसकी मामीसे नहीं पूछना पड़ेगा?"

ललिताने कोई जवाब नहीं दिया। शेखरकी बातचीतके ढंगसे वह मन ही मन अत्यन्त संकुचित हुई जा रही थी।

शेखरने आखिर कह ही डाला, " उनसे कहना चाहो, तो कह दो, तुम्हारी इच्छा । मगर, तुम जो कहोगी, वही होगा, मा,—यह मैं भी समझता हूँ और जिसे ले जाना चाहती हो, वह भी जानती है । यह तुम्हारी पतोहू है, मा ! "—कहनेके बाद ही शेखरने सिर झुका लिया ।

भुवनेश्वरी मारे आश्चर्यके दंग रह गईं । माके सामने सन्तानका यह कैसा परिहास ! एकटक उसकी तरफ देखकर माने कहा, " क्या कहा ? यह कौन है मेरी ? "

शेखर मुँह न उठा सका, परन्तु जवाब दिया । धीरेसे बोला, " कह तो दिया मा । आज नहीं, चार सालसे भी ज्यादा हो गया, तुम सचमुच ही उसकी मा (सास) हो । मुझसे अब कहा नहीं जाता मा, उसीसे पूछो, वही बतायेगी।" कहकर ज्यों ही उसने ललिताकी तरफ देखा, देखा कि ललिता गलेमें आँचल डालकर माको प्रणाम करनेकी तैयारी कर रही है । वह उठकर उसके बगलमें आ खड़ा हुआ, और दोनोंने एक साथ माके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया, इसके बाद शेखर चुपचाप धीरेसे बाहर चला गया ।

भुवनेश्वरीकी दोनों आँखोंसे आनन्दाश्रु झरने लगे । वे ललिताको सचमुच ही बहुत ज्यादा प्यार करती थीं । सन्दूक खोलकर अपने सबके सब गहने निकालकर, उन्होंने उसे पहनाते हुए धीरे धीरे एक एक करके सब बातें जान लीं । सब सुन सुनाकर उन्होंने कहा, "इसीसे शायद गिरीनका ब्याह कालीके साथ हुआ था ?"

ललिताने कहा, " हाँ मा, इसीसे । गिरीन बाबू जैसे आदमी दुनियामें और हैं या नहीं, मालूम नहीं । मैंने उनसे समझाकर कहा, तो सुनते ही उन्होंने विश्वास कर लिया कि सचमुच ही मेरा ब्याह हो चुका है । पति मुझ मुझे अँगीकार करें या न करें, यह उनकी इच्छा, पर वे हैं जरूर ! "

भुवनेश्वरीने ललिताके माथेपर हाथ रखते हुए कहा, " जरूर है, बेटी ! मैं आशीर्वाद देती हूँ, जन्म-जन्म दीर्घजीवी होकर रहे । जरा ठहरना बेटी, मैं अविनाशको खबर दे आऊँ कि ब्याहकी दुलहिन बदल गई है । "—इतना कहकर वे हँसती हुई बड़े लड़केके कमरेकी तरफ चली गईं ।

समाप्त